॥ ओं नमो सिद्धं ॥

श्री जैन प्रतिबोध चिन्तामणि

प्रथम भाग.

जिसको संशोधन करके
सर्व सज्जनोंके लाभार्थ शहेर जावद-
के बुकसेलर चौधरी जोरावरमलजी
घासीलालने छपवाके प्रसिद्ध कीया.

मु० जावद. राज-ग्वालीयर.

निर्मल प्रिन्टींग प्रेसमां लल्लुभाइ ईश्वरभाइए
छापी. पीरमसा रोड-अमदावाद.

प्रथमावृत्ति १०००. सम्वत १९७०.
सने १९१३. मूल्य =||)

☞ नोट-इस पुस्तकको खुले मूंह या दीपकके
सामने और बाजेके सहारेसे इत्यादि-
क दोषोंसे संरक्षित पढनेकी कृपा करना.

श्री

॥ श्री वीतरागाय नमो ॥

जैन प्रतिबोध चिन्तामणि.

प्रथम भाग.

(१) अथ मंगलाचरण जैन स्तवन.

पहिले तो कहो जैजिनेन्द्र२ फेर नमो गुरु चरन ॥ टेर ॥ महावीर रिपु विडार ३ जयकार २ आशपूर मेरी प्रभु ३ मैं आयो तोरी शरन ॥ प. क. जै. ॥ १ ॥ तुही तात मात प्रभु३ तेराही आधार है ॥ कलुमे तेरे नामकी३ जहाज जीवको तिरन ॥ प. क. जै. ॥२॥ शांतिकर३ शांति प्रभु जरासी महर करके मिटा जन्म और जरा मरन ॥ प. क. जै. ॥ ३ ॥ सारा समाज बीच आज३ आनन्दकर२ ॥ तेरे जापकी हवा पापरूप पुंज हरन ॥ प. क. जै. ॥ ४ ॥ गुरु

हीरालाल प्रसाद, चोथमल कहे करजोडके दे शक्ति ऐसी नाथ मुझे धर्मके सन्मुख करन ॥ प. क. जै. ॥ ५ ॥

(३) स्तवन नेमनाथजीका.

रंगत-जसोदा मैया, अब न चराऊ तोरी गय्या ॥

सेवादे मैया नेम कुंवर तोरा जैया ॥टेर॥ सावली सुरत मोहनगारी यादव कुलमें अवैया ॥ पशु जीवपर महर करीने, प्रभु गिरनार चढैया ॥ चढैया मैया, नेम कु० ॥ १ ॥ अमृत सरीखी वाणी थारी, सुणत प्रेम जगैया ॥ परउपकारी साहिब प्यारा, निरख्या नैन ठरैया ॥ ठ. मै. ने. ॥२॥ सुर इन्दर तोरी सेवा साधे, सुमर्यां सुख सवैया ॥ समदविजैजीका नन्द लाडला, देख्यां हौंस पुरैया पु० मै० ने० ॥ ३ ॥ साल गुणन्तर नम्रवमारे, वैशाख कृष्णपखैया तेजमल कहे नेमप्रभुजी, मुझपे महर करैया ॥ क०मै०ने० ॥४॥

(३) स्तवन शांतिनाथजी.

रंगत उपरोक्त.

अचलादे मैया, शांतिकुवर तोरा जैया ।टेर। जरणी कुक्षे तीन ज्ञानसुं, प्रभुजी आप अवैया ॥ मातु नजरसुं मृगी मारको, सबही रोग हरैया ॥ हरैया, मैया, शांति० ॥१॥ सातावर्ती देश आप के जिणसुं नाम थपैया ॥ शांति कुंवर प्रभु शांतिसोलमा, जगमें नाम दिपैया ॥ दि० मै० शां० ॥२॥ शांति जापजो मनमें धारे, आरत रोग जवैया ॥ विश्वसेनजीका लाल कन्हैया, सूमर्या जसबदैया ॥ ब० मै० शां० ॥३॥ लाल गुणन्तर मास वैशाखे, नग्र बमोरे अवैया ॥ तेजमल कहे शरणे आयो, शांति शांति करैया ॥ क. मै. शां. ४

(४) स्तवन पारसनाथजी.

रंगत उपरोक्त.

भामां दे मैया, पार्स नमत तोरा पैया ।टेर।

चौंतीस अतिसा प्रभुजी सोहै, वाणी गुण गजैया ॥ अजब छटा तोरी कहीय न जावे, चौसट इन्द्र सेवैया ॥ सेवैया मै. पा. ॥१॥ तावतिजारी कोढ बिमारी, दाळिद्र दूर जवैया ॥ भूत प्रेतने डाकण शाकण, पारस नाम अगैया ॥ भ. मै. पा. ॥२॥ पुरशा दाणी पार्स विख्याता, तीन लोक सोवैया ॥ अश्वसेन राजाजीके नन्दन, सुमर्या सुक्ख सवैया ॥ स. मै. पा. ॥ ३ ॥ साल गुणन्तर मास मधूमें, डूगर ग्राम अवैया ॥ तेज मल कहे प्रभुजी सोने, भवजल पार करैया ॥ क. मै. पा. ॥ ४ ॥

(५) स्तवन महावीरजी.

रंगत उपरोक्त.

त्रशलादे मैया, वृधी करत तोरा जैया ॥ टेर ॥ दशमा स्वर्गसे चवकर प्रभुजी, माता कुक्ष अवैया ॥ हाथी घोडा अरु माल खजाना, भूप-

ति राज बधैया ब. मै. वृ. ॥१॥ चौसट इन्द्र उ-च्छव कीनो, दिन२ तेज सवैया ॥ वृधी करण वृध मानजी, मिलकर नाम थपैया ॥ थ. मै. वृ. ॥ २ ॥ तीस वर्ष प्रभु घरमे रइया, संजमले तप तपइया ॥ कर्म चरने केवल पाया शिवपुर बेग वरैया ॥ व. मै. वृ. ॥ ३ ॥ सासण नायक वीरजिनेश्वर हृदय आप बसैया ॥ सीद्धारत रा-जाजीके नन्दन वृधी वृध करैया ॥ क. मै. वृ. ॥४॥ गुरु हमारा इन्दरमलजी डूंगरे ग्राम अवै-या ॥ तेजमल कहे चैत गुणन्तर आनन्द रंग बधैया ॥ ब. मै. वृ. ॥ ५ ॥

(६) स्तवन ऋषभदेवजी.

रंगत उपरोक्त.

मुरादे मैया, प्यारा लागे छे तोरा जैया ॥
मुरादे मैया वाला लागे छे तोरा जैया ॥ टेर ॥
मस्तक मुकुट कानाजो कुन्डल तिलक ललाट

लगैया ॥ रतन अंगनिया रिमझिम खेले, त्रिलोकिको रिझैया ॥ रिझैया. मै. प्या. ॥ १ ॥ कोई इन्द्राणी लाड लडावे, कोइ एक ताल बजैया ॥ कोई नृत्य करे प्रभु आगे, नाचे थाथक थैया ॥ थय्या. मै. प्या. ॥२॥ रिमझिम रिमझिम बाजे घूघरू, ठम ठम पांव धरैया ॥ दृग खेल खेलीने होगये, आतम खेल खेलैया ॥ खे. मै. प्या. ॥ ३ ॥ निज जननीने सबसे पहिले, शिवपुर पाठ पढैया चौथमल कहे नित उठ ध्याऊं ऐसे ऋषभ कन्हैया ॥ क. मै. प्या. ॥ ४ ॥

(७) स्तवन उपदेशी जोबन पच्चीसी.

रंगत–रागद्वेश दोई खेकरणां, वन्दु सोलेई जिन सोवन वर्णा पुन जोगे नरभव लियो टाणो, चेतो खरोरे धर्म पाप खोटो जाणो खरो खबर त्रिन गाता खावे, पण गयोरे जोवन पाछो नहीं आवे ॥ १ ॥ टेर ॥ जोवन गमाई बूढो होय बैठो

वळे पूरो मिण्या माहे पेठो ॥ पाछे परभव माहे घणो पछतावे ॥ पण. ग. जो. ॥ २ ॥ भ्रारे हाथ कडा कानामें मोती, ओढतो थुरमाने पीताम्बर धोती काचदेखीरने भेख बणावे ॥ प. ग. जो. ॥३॥ दुगदुगीने सोनारा डोरा, वले रुप चूंप डिल मांहे गोरा ॥ झेलारा जामा पेरसाता पावे ॥ प. ग. जो. ॥ ४ ॥ घणां घेरारा पेरता आछा वागा, लपेटा उपरणीरा वन्द लागा ॥ छोगा मेली चोवटे सेल जणावे ॥ प. ग. जो. ॥ ५ ॥ केशभमर हुंता धारा काला, गला मांहे पेरता मोत्यांरी माला ॥ मुख नागरवेलरा बीडा चावे ॥ प. ग. जो. ॥ ६ ॥ बांधता पागांसर चीरा सरपेचां माहे जडिया हीरा ॥ मूछ मरोडे कोया चढावे ॥ प. ग. जो. ॥ ७ ॥ उना भोजन तुरत तयारी, आंबा अथाणाने तरकारी ॥ वस्तु भावे तिको मंगावे ॥ प. ग. जो. ॥ ८ ॥ दिन दिनरी

पोशाक न्यारी, यातो छउस्तरी वले न्यारी न्यारी ॥ सुरत घणी जारी सुहावे ॥ प. ग. जो. ॥९॥ जेसी कुगुरुतणी वाणी, तोडावे फूल कुटावे पाणी ॥ मरीने माही गत जावे ॥ प. ग. जो. १० मसरुरी गादीने तेवड तकिया येतो लोग माणस माहे बडा सुखिया ॥ करजोडी जीने शीश नमावे पण. ग. पा. ॥११॥ घररी धणियाणी रातीमाती, माहे वैटा वहुने न्याती गोती ॥ राते घणा पहरे न वेष वणावे ॥ प. ग. जो. ॥ १२ ॥ साध कहे सुणोरे भाया, संसार सुपना केरी माया ॥ वादल जु माया विरलावे ॥ प. ग. जो. ॥ १३ ॥ कामणं हुंती कंचन वर्णी, भोगी पुरुषारा मन हरणी ॥ धणी पण तिणरो गायो गावे ॥प. ग. जो. १४॥ नरतो नारीरे वश पडिया, निकल न सके जंजीरा जडिया ॥ स्त्री काजे धन कमावे ॥ प. ग. जो. ॥१५॥ ठठामे ठेल परीवाली, थारी प्रीतम प्रीत

नहीं पाली ॥ तुर्त लुगाई दूजी लावे ॥ प. ग. जो. ॥ १६ ॥ धारा कपडा गेणा पेरे नारी दूजी, तोने धर्मरी बात नेणा नहीं सूझी ॥ त्रिया जोवे ने नर्कमे दुःख पावे ॥ प. ग. जो. ॥ १७ ॥ तुतो रुप जोबनमे गर्वाणी, तो सरीखी नारी होय गई जाणी ॥ तु उभो घर मेली जावे ॥ प. ग. जो. ॥ १८ ॥ साध कहे सांभल हे बाई, तोने भांत२ कर समझाई ॥ तुंतो बासी टुकडो खावे ॥ प. ग. जो. ॥ १९ ॥ तीज तमाशा भरता मेला, जटे लोग लुगाई घणा हुता भेला ॥ गेली लुगायां गाल्यां गावे ॥ प. ग. जो. ॥ २० ॥ खेलतारे गेरिया होली, जटे अलगण पाणी घणो ढोलो ॥ जटे होलीमे अकल सऊ जावे ॥ प. ग. जो. २१ काया माया दोन्यों काची, एतो साध कहे ते सब साची ॥ कारमी रीधने छटकावे ॥ प. ग. जो. ॥ २२ ॥ दिन२ बुढापो नेडो आवे, पण साध साधवी

चेतात्रे ॥ गेले खर्ची विना रीतो जावे ॥ प. ग. जो. ॥ २३ ॥ कुदेव कुधर्मरो रमियो थारे हिंसा धरम दिलमांहि बसियो ॥ दया धर्म दिलमांहि नही भावे ॥ प. ग. जो.॥२४॥ संसाररी मायासेर बाजी, जीव देखी देखीने होय गयो राजी ॥ जोबन जातां वार न लगावे ॥ ग. जो. ॥ २५ ॥ रिख रायचन्दजी कहे सुणो भव जीवो, थे सूख चावोछो अतिवो ॥ तो दया धर्म थारे दिल भावे ॥ ग. जो. पा. ॥ २६ ॥

(८) अथ सझा उपदेश ३५ सी.

मोह मिथ्यात्वकी नीदमे जीवा सूतो काल अनन्त ॥ भव२ माहे तु भटकियो जीवातें सांभल विरतंत। जीवा तुतो भोलोरे प्राणी इमि रुलियो संसार ॥ १ ॥ अनन्त जिन हुआ केवली जीवा उत संगयों ज्ञान अगाध ॥ अणी भवथी लेखो लियो जीवा थारी न कही कोई याद ॥ जीवा

तुतो० ॥ २ ॥ परथी पाणी अगन में जीवा, चौथी बाऊ काय ॥ एक एकणी कायमें जीवा, काल असंख्या जाय ॥ जीवा तुतो ॥३॥ पाचवी काय वनस्पति जीवा, साधारण प्रत्येक ॥ साधारणमें तु वस्यो जीवा, ते विवरो तु देख ॥ जीवा ॥ ४ ॥ सुई अग्रनी गोदमें जीवा, सेणी असंख्या जाण ॥ असंख्या ताप रतलकया जीवा, गोला असंख्य प्रमाण ॥ जीवा. ॥ ५ ॥ एक एक गोला मधे जीवा असंख्या शरीर ॥ एक एक शरीरमें जीवा, जीव अनन्त बताया श्रीवीर जीवा. ॥ ६ ॥ तिण माहेथी जिवडा जीवा, मोक्ष जाय डग चाल ॥ एक शरीर खाली न होवेई जीवा, न होवई अनन्तइ काल ॥ जीवा ॥ ७ ॥ एक२ भवीने संगई जीवा, भवी अनन्ता होय ॥ वली एहं विशेष तेहना जीवा, जन्म मरण तु जोय ॥ जीवा ॥८॥ दोय घडीकाची माहे जीवा, पेंसट सहस्रशतपांच

॥ छत्तीस अधिकज जाणजो जीवा, येहे कर्मानी खांच ॥ जीवा ॥ ९ ॥ छेदन भेदन वेदना जीवा, नर्कों सही बहु मार ॥ तिनसेती निगोदमें जीवा, अनंत गुणो विस्तार ॥ जीवा तुतो. ॥ १० ॥ एकेन्द्री माहिथी निकली जीवा, इन्द्री पाव्यो दोय ॥ तवपुन्याई तेयनी जीवा. तेथी अनन्ती होय ॥ ॥ जीवा० ॥ ११ ॥ इमि ते इन्द्री चोइन्द्री जीवा, होय२ लाखही जात ॥ दुख दीठा संसारमें जीवा, सुणता इचरज वात ॥ जीवा तूतो ॥ १२ ॥ जलचर थलचर खेचरु जीवा, उरपुर भुजपुर जून, ताप सीत तरशा सही जीवा, दुख मिटावे कूण ॥ जीवा० ॥ १३ ॥ इमि रडभडतां संसारमें जीवा, पाव्यो नर अवतार ॥ गर्भा वासमें दुखसया जीवा, तेजाणे करतार ॥ जीवा ॥ १४ ॥ मस्तकतो हेटो होवे जीवा, उपर होवे पांव ॥ आख्यांविच मूठी रेवे जीवा, विष्टाना घर माहे ॥ जीवा ॥ १५ ॥

बाप वीर्य माता रुद्रनो जीवा, योंथेलीनो आहार, भूलगयो जन्म्यां पछे जीवा, शेखी करे जुहार ॥ जीवा ॥ १६ ॥ आठक्रोड सुईलाल करी जीवा, चांपेरुरुं माहि। अठगुणि तिणसूं वेदना जीवा, स-हीतें गर्भावास ॥ जीवा ॥ १७ ॥ जन्मता क्रोड गुणी कही जीवा, मरतां क्रोडा क्रोडी जन्म मरण नी जीवने जीवा, ए छे मोटी खोड ॥ जीवा १८ ॥ देश अनारज उपन्यो जीवा, इन्द्री हीणी थाय ॥ आउखो ओछो होवई जीवा, धर्मन कीयोजाय ॥ ॥ जीवा ॥ १९ ॥ कदियक नरभव पावियोजीवा, उत्तम कुल अवतार ॥ देहनिरोगीपावी नही जीवा, यूंही खोयो जमार ॥ जीवा ॥ २० ॥ ठगपासी-गर चोरडा जीवा, झीमर कसाई न्यात ॥ उपजी ने मूओ नही जीवा, असी नही कोई जात ॥ ॥ जीवा ॥ २१ ॥ चवदेही राजुलोकमें जीवा, जन्म मरणनी खोड ॥ वालागरमात्रपण, ईजीवा,

असीन हीरही कोई ठोड ॥ जीवा ॥ २२ ॥ यही जीव राजा हुओ जीवा, हस्ती बंधाया बार ॥ कदीयक कर्मके उदे जीवा, नमिल्यो अन्न उधार ॥ २३ ॥ इमि भ्रमतां संसारमें जीवा, पाव्यो साम्ग्रीसार ॥ आदरने छिटकायदे जीवा, जाय जमारो हार ॥ जीवा ॥ २४ ॥ खोटा देव जुहार न जीवा, लागो कुगुरु केड ॥ खोटा धर्मने आदरी जीवा, फिरे बहुं गत फेर ॥ जीवा ॥ २५ ॥ कबहुक तु नर्के गयो जीवा, कबहुक हुओ देव ॥ पाप पुन्य तुल्य हुआ जीवा, लागी मिथ्यातनी टेव ॥ जीवा ॥२६॥ ओघाने वलि मोपती जीवा, मेरु जेवडा लीध ॥ करिया करतुत जो बाहिरो जीवा, एको काज न सीध ॥ जीवा ॥ २७ ॥ चार ज्ञान गमायने जीवा, नर्क सातमीं जाय ॥ चवदे पूर्वना भण्या जीवा, पडी निगोदमे जाय ॥ जीवा ॥२८॥ श्रीभगवंतजीनो धर्म पायां पछे

जीवा, गुंही न जावे फोक॥ कदीयक परतल होय तो जीवा, अर्ध पुद्गलमें मोक्ष ॥ जीवा ॥ २९ ॥ सूक्षमने वादरतणी जीवा, मेलुं वर्गणा सात ॥ एक पुद्गल प्रावर्तन होवई जीवा, येछे झीणी बात ॥ जीवा ॥ ३० ॥ पाप आलोई आपणो जीवा, आश्रव नाळा रोक ॥जाय अर्ध पुद्गल माहे जीवा, अनन्ती चोवीसी मोख ॥ जीवा ॥ ३१ ॥ अनंता जीन मुक्ते गया जीवा, टाली आतम दोष ॥ नगयान जावसी जीवा, एक मुलाना मोक्ष ॥ ॥जीवा ॥ ३२ ॥ एवा भाव सूणी करी जीवा, अजहु न चेत्यो नाय ॥ ज्यों आयो ज्योंही गयो जीवा, लख चौरासी माहि ॥ जीवा ॥ ३३ ॥ कईयक उत्तम चेतिया जीवा, जाण्यो अथिर संसार ॥ सांचो धर्म सरधी करि जीवा, पहुंच्या मुक्त मुझार ॥ जीवा ॥ ३४ ॥ दान शील तप भावना जीवा, इणसूं राखो प्रेम ॥ शिवरमणी

निश्चै मिले जीवा, ऋषी जेमलजी कहे एम ।३५।

(९) अथ आचार छत्तीसी.

॥ दोहा ॥ गुरुसम जगमें को नहीं, तरण तारणकी जहाज ॥ सतुगुरु पाया बिना, सर्व काज अकाज ॥ १ ॥ गुरुके नामे भूलिया, तेतो मूरख मूढ ॥ चतुर थई निरणो करो, छोडो कुलकी रुढ ॥ २ ॥ गाथा ॥ आगम अर्थ अनुपम वाणी परमारथना भरिया ॥ साध आचारजो पूरो दाख्यो, तो भिन२ निरणो करियो ॥ साधुजी थे सूत्र भणी सूं कीनो ॥ १ ॥ आधाकर्मी आरनी छोडे भरभर पातरा लावे ॥ आंख मीचीने करे अंधारो, तो रसना नागरदीखावे ॥ ॥ साधुजी ॥ २ ॥ आधाकर्मी थानगमें रेता, महा सावज किरिया लागे ॥ दरवे सेवन भावे गृस्थी, तो पंच महाव्रत भांगे ॥ साधुजी ॥ ३ ॥ चीरमुज तरी पृथ्वी कायमें, जीव असंख्य

बतावे ॥ माहे बैठा हो मुनीश्वरजी, थे मरडो किम नकावे ॥ साधु० ॥ ४ ॥ जायगां नीपावे न छान छवावे, चुनो देवावण ढुको धर्मरे कारण जीव हणावेतो, दया धर्म शुं चुंको ॥ साधु० ॥ ५॥ वेलातेलादिक तप अठाई, मासखमणादिक ठावे ॥ आधाकर्मी वस्त भोगेतो, युं कई एर गमावे ॥ साधु० ॥६॥ आचारंग सुत्रमाहि बोले मुल गुण वृत भांगे ॥ मुल भांगे संजम वृक्षजो केरो, तो मुक्तिना फल केम लागे ॥ साधु० ॥ ७ ॥ आधाकर्मीका दोषण भारी, कियो सुत्र भगोतीमुजारी ॥ वर्जिया दशमी कालक उत्तरा दिनमें, तोरुलसी अनंत संसारी ॥ साधु० ॥८॥ वस्तर पातर आरजो स्थानग, मोलरा साधुने वरज्या ॥ अतरा ऊपर ऊद्दक दान राखेतो, ते मुनीने किम सरज्या ॥ साधु० ॥ ९ ॥ कलाररो घर वरज्यो साधुने, आरपाणी कोई लावे ॥ न-

सितके सोलेमें उद्देश, चौमासी प्राश्चित आवे ॥ साधु० ॥ १० ॥ कीडयांनी परे पंगत बांधे, सगला तिण घर जावे ॥ लोट पातरा पूरण भरने पीठ ढाकने आवे ॥ साधु० ॥ ११ ॥ वलि दुजे दिनतो नित पिंड लागे, ग्रस्थीयां पासुंरखावे । ठाम खाली हुओ काचो पाणी घाले, तीजो पिच्छाति दोष लगावे ॥ साधु० ॥ १२ ॥ जीमणवारके दुजे दिन उठी, ऋषी पातरा लेजावे ॥ ग्रस्थीतो जाणे आघा मीठाने, मुनीवरने ताजा भावे ॥ साधु० ॥ १३ ॥ लघुताई लागे जिनमार्गनी, योतो दुषण भारी ॥ पापणी रसनाने वस पडिया, तो करसी जान खुवारी ॥साधु०॥१४॥ कागद देवेने वळी दिरावे, ग्रस्थीसुं परचो मांडे ॥ पुंजणीनोकरवारी ग्रस्थीने देवे, तो साधुनो सांग जो भांडे ॥ साधु० ॥ १५ ॥ पूंजणीसुंतो दया उपजसी, निरवद काम जो करशो ॥ अणीसर

धारे लेखे जणीने, अन्न पाणी पण देणो ॥ साधु. ॥ १६ ॥ पाणी दियां अपकाय उबरसी, अन्नदियां सब संहारे ॥ अणीसर धारे लेखे तणीने, नहीं रेणो गृस्थीसूं न्यारो ॥ साधु. ॥ १७ ॥ कोई भोलो गृस्थी भेद न जाणे, गुरुजी कृपा करी माने देवे ॥ वीर कयाई भेष जो धारी, परमारथना नहीं विवेक ॥ साधु. ॥ १८ ॥ सूत्र नसीतमें आगम भाख्यो, साधु ढीला पडसी ॥ पूजणी नोकरवारी गृस्थीने देसी, तो पेट भराई करसी ॥ साधु. ॥ १९ ॥ सदोष थानग बाधीन बैठो, जाणे चेला चेली सुख पासी ॥ आऊखो आईने घेटी पकड सीतो, पाछे घणो पछतासी ॥ साधु ॥ २० ॥ खुशामदी तो करे दातारनी, सेवक सम आधीनो ॥ सरस अहार खावणरे कारण, हराम परे चित्त दीनो ॥ साधु० ॥ २१ ॥ आप बराबर करवारे कारण, अछत्ता

दोष वतावे ॥ सूत्र आवसग मांहे देखेतो बोध बीज नही पावे ॥ साधु०॥२२॥ सूधी सीख कोई दासजो देवे, तो गुरु गुरुणी समगणवी ॥ साध आचार वतावे कोईतो, तणीपर रीसन करणी ॥ साधु० ॥ २३ ॥ चोमासो उतर्यां एकमके दिन साधुने बिहार जो करणो ॥ अधिको रवेतो दोषण लागे, आचारंग मोह नरणो ॥ साधु० ॥ ॥ २४ ॥ मोलल्लिरावे वस्तर पातर, सखराने नखरो वतावे ॥ उतरादिन सुतरमें देखो, तो साधु पणो उठजावे ॥ साधु० ॥ २५ ॥ वेचातो ले जीरो दामजो काटे, कोगुरू दल्लाल जाणो ॥ साधपणो नही दोन्यारे माही, कुडीमत करो ताणो ॥ साधु० ॥ २६ ॥ दाम दिरावे आमना करने, जिणरो तो दोषण मोटो ॥ तणीने वन्दना भावसुं करसी तो, प्रत्यक्ष पडसी टोटो ॥ ॥ साधु० ॥ २७ ॥ आवसगमांहि विस्तारजो

भाष्यो, ज्ञाता सुत्रमे साखी ढीलाने नमतां स-
मकित जावेतो, भगवंत काणनु राखी ॥ साधु०
॥ २८ ॥ अठारे जातका चोर जो चाल्या, एक-
ण चोरकी लारे ॥ परसण व्याकरणमें असाधुने
नमतां, समकित रत्न जोहारे ॥ साधु० ॥ २९ ॥
स्नानतो सव अंगजो धोवे, देश जो मुख
परवारी ॥ ततो अनन्त संसार मेरुलसी, क्रियो
छटा अधीनमें विचारी ॥ साधु० ॥ ३० ॥ आं-
खां माही काजल घाले, साद साधवी कोइ ॥
वीर कयाये भेष जो धारी, दशमी कालिकलो
जोई ॥ साधु० ॥ ३१ ॥ बहुतवार जीव संजम
लीनो, साधुको नाम धरायो ॥ साधपणा विना
गर्जनी सरसी तो, युही जन्म गमायो ॥ साधु०
॥ ३२ ॥ अहो अज्ञानपणो जीवजो केरो, ज्ञान
लोचन डपटायो ॥ मोह वश पडियो ममता
माहि, लालचमें लपटायो ॥ साधु० ॥ ३३ ॥

सुत्रतणी सिर आणने धारि, जाणतो वातने ठेले आचारंगनो आवे रेलो तो, चर्चा आगी मेलो ॥ ॥ साधु० ॥ ३४ ॥ श्रावकने पण करणो निरणो, समकित कणि विध आवे ॥ शुद्ध आचारथी पालो स्वामी, तो थारे मारे गुणारी सगाई ॥ साधु० ॥ ३५ ॥ साध साधवी सीख सुणीने, छेत्र कोई मति करजो ॥ सेतो सीख दिवी निज जीवने, वीजा बिचारीने लीजो ॥ साधु० ॥ ३६ ॥ पुज्य गुमान चन्द्रजीरा प्रसाद सु, सीख सुत्र थी आणी ॥ रत्न चन्द्रजी जोडी पालीमें, सुणजो भवियण प्राणी ॥ साधु० ॥ ३७ ॥

(१०) स्तवन आचार बावनी

दोहा ॥ वर्धमान शासन धणी, गुणधर लागुं पांय ॥ दिया जो माता वीनवु, वंन्दो शीश नमाय ॥ १ ॥ गणा अंगमें चालिया, श्रावक चार प्रकार ॥ मात पिता सरिका कया,

साधां ने हितकार ॥ २ ॥ करडी काठी सीख दे, साधांने हितकार ॥ ढीला पडवा दे नहीं, ते सुणजो विस्तार ॥ ३ ॥

॥ गाथा चालु ॥ जी स्वामी घर छोडीने नीसर्या एतो लीदो संजम भारजी ॥ जीस्वामी पंच महा वृत पालजो मति लोपजो जिणजी री कार ॥ जीस्वामी अर्ज सुणो श्रावक तणी ॥ १ ॥ जीस्वामी तप जप संजम आदरो, निद्राने विकथा निवारजी ॥ जीस्वामी वाईस परीसा जीतजो, येतो चालणो खांडानीधार ॥ जी स्वा० (अर्ज) ॥ २ ॥ जीस्वामी गृस्तीसूं मोह मत राखजो, एतो लीजो सुध मन आरजी ॥ जीस्वामी असुजतो आर देखने पीछा, फर जाजो तणी वारजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥ ३ ॥ जी स्वामी कोइक वेरासी याने लाडवा, कोइक कुरोने खीरजी ॥ जीस्वामी कोइक वेरासीसु खा

टुकडा, घेतो मत होजो दिलगीरजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥ ४ ॥ जीस्वामी कोईक करसी थाने वन्दना, कोईक नमासी सीसजी जीस्वामी कोईक देसी थाने गालियां, मती आणजो रागने रीसजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥ ५ ॥ जीस्वामी छल छिद्र जोवो मती, मती आणजो राग ने रीसजी जीस्वामी क्रोध खखाय करजो मती, खम्या करणी विशेशजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥६॥ जीस्वामी जंतर मंतर करजो मती, मत करजो स्वप्न विचारजी जीस्वामी जोतिष निमत भाषोमती, मती लोपजो जिणजोरी आणजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥ ७ ॥ जीस्वामी रंग्या चंग्या रेणो नही, नहीं करणो देह श्रृंगारजी ॥ जीस्वामी केश श्रृंगार वणावतां मुख धोवतां दोष अपारजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥ ८ ॥ जी स्वामी कपडा पेरो ऊजरा, भारी मोला चित

चावजी ॥ जीस्वामी साधुजी दीखे संणगारिया, लोगा माहि निन्दा थाय ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥ ए ॥ जीस्वामी वएया वणाया वींदजुं, गोरोने फुठरा डुङ्गारजी जीस्वामी मेल उतारे शरीरनो, साधुने लागो जंजालजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥१०॥ जीस्वामी चौमासो करजो देखने,स्थानक लीजो विचारजी ॥ जीस्वामी त्यां रेवे पुरुष अस्तरी, नही साधुतणो आचारजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥ ११ ॥ जीस्वामी संथारो करजो देखने. तपस्या करजो विचारजी ॥ जीस्वामी पाछे मन डिग जावसी, तोहंसेगा नरनारजी ॥ ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥ १२ ॥ जीस्वामी दोय साधु तीन आरज्या, विचरजो तणी कारजो ॥ जीस्वामी एक साधु दोय आरजा, मत करजो थे विहारजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥१३॥ जीस्वामी मेघ मुनीश्वर मोटका, कही धर्म रुची अणगारजी

॥ जीस्वामी कीडियानी करुणा करी वली, पहु-
च्या अनुत्र वेमाणजी ॥ जीस्वी० (अर्ज) ॥१४॥
जीस्वामी जोथारे छांदे चालसी, तोलोपो गुरां-
श्रीरि कारजी ॥ जीस्वामी ड्रव्यभाव राखोगातो,
नही सरे गर्ज लगारजी. ॥ जीस्वा० (अर्ज)
॥ १५ ॥ जीस्वामी वेरणने गया जुरसो, थे देखी
नार्यां तणा रुपजी जीस्वामी साधपणाने छेदने,
चारी तरस्यू जावोगा चुकजी ॥ जीस्वा० (अर्ज)
॥ १६ ॥ जीस्वामी कंठ कराधणी कामने, थेतो
रीझावसो नरनारजी ॥ जीस्वामी वेराग भाव
आण्या विना, थारी नहीं सरे गर्ज लगारजी ॥
जीस्वा० (अर्ज०) ॥ १७ ॥ जीस्वामी पले वण
क्रियां विना, परभाते करो विहारजी जीस्वामी
कनो आरदो न्योटको, नहीं साधुतणो आचारजी
जीस्वा० (अर्ज) ॥ १९ ॥ जीस्वामी गृस्तीरे
घर वेसवो नहीं कारण विना कोई साधजी

॥ जीस्वामी सावद्य भाषा बोलवी नहीं, नातस जोमयासुं कर्म बंधायजी ॥ जीस्वामी (अर्ज) ॥ १९ ॥ जीस्वामी मुंडासूंवस्त निशोदने, मत करजो अंगीकारजी ॥ जीस्वामी वमियारी वांछा कुण करे, काग कुत्तरा तणो आचारजी ॥ जी॰ स्वा॰ (अर्ज) ॥ २० ॥ जीस्वामी आपतणी परसंसा करे, पेलापर घरे द्वेशजी ॥ जीस्वामी जामे साधपणो तोछे नहीं, चोडे सुत्र लेवोनी देखजी ॥ जीस्वा॰ (अर्ज) ॥ २१ ॥ जीस्वामी ओछी भाषा काडने, त्यां कर मुखसूं जोर जी ॥ जीस्वामी साधुजी अलमस्त रहे, विचार्या विना बोले कठोरजी ॥ जीस्वा॰ (अर्ज) ॥ २२ ॥ जीस्वामी नठंगण कारण विना, देवे पूठ पागोया पीठजी ॥ जस्वाभी पुज कहे पूजा वसी, रेसी मुक्त मार्ग सुंडुरजी ॥ जीस्वामी ॥ (अर्ज) ॥ २३ ॥ जीस्वामी तिथी परभी तप

नीकरे, नही लोकतणी मुरजादजी ॥ जीस्वा॰ मी दोई ठक उठे गौचरी, पडया जीभतणे स्वादजी ॥ जीस्वा॰ (अर्ज) ॥ २४ ॥ जीस्वामी ताकताक जावे गोचरी, वली लावे ताजा मालजी ॥ जीस्वामी अरस ऊपर नजर नही धरे, वली वणारयो कुन्दो लालजी ॥ जीस्वा॰ (अर्ज) ॥ २५ ॥ जीस्वामी एक घरे दो न्युटकां, नित लावे लगावण आरजी ॥ जीस्वामी नित पिड आरवेयां थकां, साधुने लागे तीजो अनाचारजी जीस्वा॰ (अर्ज) ॥ २६ ॥ जीस्वामी ऊंचे डोरे मोपती, पले वणरी नही ठीकजी ॥ जीस्वामी सांझ सवेर सुई रहे, इतो कणी विधमाने सीखजी जी॰ (अर्ज) ॥ २७ ॥ जीस्वामी गछवाची सुंपरवो घणो, आवण जावण होयजी ॥ जीस्वामी लेणादेणा सटापटा, साधुने करणा नही जोगजी ॥ जीस्वा॰ (अर्ज) ॥ २८ ॥

जीस्वामी कुण बोलीने नटे,दुजो वर्तजो देवे खो-
यजी ॥ जीस्वामी सांचाने जुठो करे, योतो सांग
साधुरो होयजी ॥ जीस्वा० (अर्ज) ॥ २ए ॥
जीस्वामी प्राचित लागे सामठो श्रावक पण
साखी होयजी ॥ जीस्वामी ढेढा थका लेवेनही
जारे परभव रोडर नही कोयजी ॥ जीस्वा०
(अर्ज) ॥ ३० ॥ जीस्वामी खाय पीयने सुई
रहे, इतो बेठा पमीकमणो ठायजी ॥ जीस्वा-
मी वस्तर पातर राखे घणा, जाने जिनपासता
केवायजी ॥ जीस्वा अ. ॥ ३१ ॥ जीस्वा
मी नारी आवे एकली, अक्षर पद सीखण का-
जजी ॥ जीस्वामी वली आवे रातकी, मती सी-
खावजो मुनीरायजी ॥ जीस्वा० अ. ॥ ३२ ॥
जीस्वामी सावद्य भाषानी चोपियां, मंडावण
मेरो लोकजी ॥ जीस्वामी पेडी जमावे आपणी,
वेराग बिना सब फोकजी ॥ जीस्वा० अ. ॥ ३३ ॥

जीस्वामी श्रावक मात पिता जसा, वळी सीख देवे भली रीतजी ॥ जीस्वामी जाने काटा खीला सरीखा गणे, जाने फरफर करे फजीतजी जीस्वा० (अर्ज) ॥ ३४ ॥ जीस्वामी चवदे चुकावारे भूलिया, नवका नहीं जाणे नामजी ॥ जीस्वामी गाम ढंढेरो फेराविया, यातो श्रावक मारो नामजी ॥ जीस्वा. (अर्ज) ॥ ३५ ॥ जीस्वामी ऐसा श्रावक जाणो मती, एतो श्रावक बार वृत धारजी ॥ जीस्वामी कष्ट पडया कायम रहे, ग्यारे पडमाना पालनहारजी ॥ जीस्वा. (अर्ज) ॥ ३६ ॥ जीस्वामी उंचा चढीने मालिये, मती जोवजो नरनारजी ॥ जीस्वामी वश धारो नहीं रेवसी, यातो मन थांरो लगारजी ॥ जीस्वा. (अर्ज) ॥ ३७ ॥ जीस्वामी चतराम राखो वेरागका, तोपण आपण छांदेजी ॥ जीस्वामी सुई डोरारा न्यावसूं,

थाने राखयांसुं मिलसी अंधकुपजी ॥ जी. ॥ (अर्ज) ॥ ३८ ॥ जीस्वामी दुखमी आरो पांचमो, इतो निन्दाकारी लोगजी ॥ जीस्वामी ओगणावादे जो बोलसी, थेतो शुद्ध पालजो जोगजी ॥ जी. (अर्ज) ॥ ३९ ॥ जीस्वामी सुत्र सिद्धांत वांच्या नहीं, मे सूणयासुं कियो उपायजी ॥ जीस्वामी इणमा ओछो अधको होयतो, मोन सूत्र दीजो बतायजी ॥ जीस्वा. (अर्ज) ॥ ४० ॥ जीस्वामी आचारंगमे चालियो, योतो साध तणो आचारजी ॥ जीस्वामी तिन उण सारे पारसोत्तो, करसो खेवो पारजी ॥ जीस्वा. (अर्ज) ॥ ४१ ॥ जीस्वामी इरजा भाषा एकणा, वलो ओलखलो आचारजी ॥ जीस्वामी गुणवंत साधु साधवो, जांने वन्दूजो वारंवारजी ॥ जीस्वा. अ. ॥ ४२ ॥ जीस्वामी आप थापो परनिन्दको, तिणमे तेरा दोषजी ॥

जीस्वामी डुजेसम्मरदेखलो, थे किणविध जासो मोक्षजी ॥जीस्वा. अ. ॥ ४३ ॥ जीस्वामी साधु जीमे गुण अति घणा, मांसू पूरा कयोयन जा- यजी ॥ जीस्वामी से ठारे मन भावसी, इतो ढीलानीदव थायजी ॥ जीस्वा. अ. ॥ ४४ ॥ जीस्वामी एशरादना न खेदना, मती करजो ता- णाताणजी ॥ जीस्वामी सादसादवी लेवेजको, उरो लीजो तणीवारजी ॥ जीस्वा. अ. ॥४५॥

(दोहा) मुनीवर उठ्या गोचरी, ईरजा सुमति समार ॥ वेश्यानो पाडो वरजि करी, फिरजो नग्र मुजार ॥ १ ॥

जीस्वामी किणकारण मे वरजियो, घतो सांभलजो अधिकारजी ॥ जीस्वामी शंका उपजे चित्तमें, चारित्रनो होवे विनाशजी ॥ जीस्वा. अ. ॥ ४६ ॥ जीस्वामी मानुपति धारजो, रंग विरंग सुचित आणजी ॥ जीस्वामी जो थोरा

मनमें शंका होवे, तो आचारंग लीजो देखजी ॥ जीस्वा. अ. ॥४७॥ जीस्वामी आंधी कांणी कुबडी, वली टुंटी तिरिया जाणजी, जीस्वामी जांकने ऊभारीजोमती, कई पांगुली तिरिया जाणजी ॥ जी० अ. ॥ ४८ ॥ जीस्वामी नग्रमे उठया गोच्चरी, एकमूडासूं लीजो आरजी ॥ जीस्वामी आछा आछा ताकिया, कांइ लागो दोष अपारजी ॥ जीस्वामी अ. ॥ ४९ ॥ जी-स्वामी राजमार्ग ऊभा रीजोमती, मती जोवजो लोवारनी सालजी ॥ जीस्वामी एकली तिरीया देखने, मतिकरजो वात विचारजी ॥ जीस्वा. अ. ॥ ५० ॥ जीस्वामी उतावरा चालो मती, मती करता जाजो वातजी ॥ जीस्वामी हंस्ता-पर हालो मती, योतो साधुताणा आचारजी ॥ जीस्वामी. अ. ॥ ५१ ॥ जीस्वामी आचार वा-वनीसामरने, थेतो हरदे लीजो धारजी ॥ जी-

स्वामी जिणजीरा वचन हेरादसो तो, करर
खेवा पारजी ॥ जास्वामी. अ. ॥ ५२ ॥ ज
स्वामी समत अढारा छत्तीसमें, जोडी दक्षण दे
मुजारजी ॥ जीस्वामी जोग्री मोतीचन्द जुग
सु, गाथा सामलजो नरनारजी ॥ जीस्वा
अर्ज सुणो श्रावक तणी ॥ ५३ ॥

वार्तीक याआचार वावनी श्रावकजी केश
मलजी मापावत जावद वालाका हाथसूं न
जावद मदे सम्वत १९६१ ज्येष्ट शुक्ल ३
उतारी छे उगाडे मुषे दीवा प्रकाशे नथी वांच

(११) स्तवन धनाशालभद्रजी

(रंगत मह्लांमें बैठी हो राणी कमलावती

सूराने लागे वचन जोताजणो, कायरने ला
नहीं कोय सांभल हो सुरता ॥ सूरा० ॥ टेर

नगरीतो राजगरीना वासीया, सेठ धन्नो
जुगमें सार पूरव पुन्य सुवहुरिध पाविया, श्र

नार्यांना भर्तार ॥ सांमल ॥ सु० ॥ १ ॥ एक दिन धनजी हो बैठा पाटले, स्नान करे छे तिण वार ॥ आठोही नार्या मिलकर प्रेमसूं, कुड रही छे जलनी धार ॥ सा. सु. ॥ २ ॥ सुभद्रा हो नारी चौथी तेयनी, मनमे थई छे दिलगीर ॥ आसु तो निकल्या तेना नेणसुं, कामण क्यो थई छे उदास ॥ शंका मत राखो मुझ आगले ॥ कारणको कहोनीवीमास ॥ सा. सु. ॥ ३ ॥ कामण कहे हो कंथां माहेरो, वीराने चडियो वेराग ॥ एक एक नारीओ नित्तकी परिहरे ॥ संजम लेवाकी रही छे लाग ॥ सा, सु. ॥ ४ ॥ धनजी कहे हो भोली बावरी, कायर दीसे छे थारो वीर, संजम लेणो तो मनमे धारियो ॥ फिर क्यो करणीया ढील. सा. सु. ॥ ५ ॥ कामण कहे हो कथां माहेरा, मुखसे वणाओ फोकट वात ॥ यो सुख छोडीने वाजो सूरमा, ज-

दी जाणांगा प्रीतम सांच ॥ सा. सु. ॥ ६ ॥ अतरामे धनजी उठीने बोलिया, कामण रीजो म्हासूं दूर ॥ संजम लेवांगा अणी अवसरे, जदी वाजांगा जगमे सूर ॥ सा. सु. ॥७॥ बे कर जोडीने सुन्दर वीनवे, कियो हांसीके वशबोल ॥ काचीकी सांचीन कीजे साहेबा ॥ हिवडे विचारीने वाहर खोल सा. सु. ॥ ८ ॥ संजम लेणोहो प्रीतम सोयलो, चलणो कठिन विचार ॥ वाइस परीसा सेणा दोयला ॥ ममता मारीने समता धार ॥ सा. सु. ॥ ९ ॥ उतर पग उत्तर हुआ अतिघणां आया सारारे भवन उगाव संजम दोई साथे आदरां ॥ उतरोनी कायर नीचे आव ॥ सा. सु. ॥ १० ॥ साला वन्देवी संजम आदर्यो, वीर जिनंदजीके पास ॥ सालभदरजी स्वारथ सिध गया, धन्नोजी सिवापुरवास ॥ सा. सु. ११ ॥ समत उगणीसे साल इगसटे,

चितोड कियोरे चोमास ॥ मुनीनंदलालतणा शिष्य गावियो ॥ मनवांचित फलेगा मुझ आस ॥ सांभल हो सुरता. ॥ १२ ॥

(१२) स्तवन नालन्दीपाडानो

रंगत एक कोड पुरव लजपा ख्यालाता मूरां देवी माताजी, टेर मगध देशरे मांहि बिराजे,सुन्दर नगरी सोवेजी ॥ राजगरी राजा सेण करी, देखन्ता मन मोहेजी ॥ अणी नालन्दी पाडामें प्रभुजी चवदे किया चौमासाजी ॥ टेर ॥ सरावक लोग वसे धनवन्ता, जिन मार्गना रागीजी ॥ घरघर माहे सोनो रुपो, जोत झगामग लागीजी ॥ अ. च. ॥ १ ॥ जडावगेणा जोर विराजे हार मोत्यां नव लडियाजी ॥ वसतर पेरे भारी मोला, गेणारतनां जडियाजी ॥ अ. च. २ ॥ धन धर्मी नालन्दी पाडे, दोन्यो वात विशेखोजी ॥ फिर २ वीर आया बहु विरीया, घणो उपकार जो

देख्योजी ॥ अ. च. ३ ॥ तिनपाट राजा सेणक-
ना, समकत धारी लगताजी ॥ जिन मारग तो
जोर दिपायो, हुआ वीरतणा बहु भगताजी ॥
अ. च. ४ ॥ अणी पियर मांहे समगत पावी,
चेलणा पटराणीजी ॥ महा सतीजी संजम
लीनो, वीर जिनन्द्र वखाणीजी ॥ अ. च. ॥५॥
अभेकुंवरजी महाबुध वंता, मंत्रीनी बुध भारी-
जी ॥ संजम लेने स्वर्ग पहुंच्या, हुआ एका भव
तारीजी ॥ अ. च. ॥ ६ ॥ ते इस वटा राजा
सेणकना, पहुंच्या अनुत्र विमाणोंजी ॥ दश
पोता देवलोक पहुंच्या, चव जासी निरवाणोजी
॥ अ. च. ७ ॥ ते इस राणी राजा सेणकनी,
तपकर देही गालीजी ॥ मोटी सतियां मुक्त प-
हुंची, काटकरमाकी जालीजी ॥ अ. च. ॥ ८ ॥
जम्बु स्वामी तिण नगरी हुआ, आठ अंते वर
परणयाजी ॥ बाल ब्रह्मचारी भली विचारी, नि-

मेलकीदी किरयाजी ॥ अ. च. ॥ ९ ॥ गोभद्र सेठ अणी नग्री हुआ, सेठे संजम लीदोजी ॥ वीर सरीखा सतगुरु मिलिया, जन्म मरणसूं वीनोजी ॥ अ. च. १० ॥ सालभद्र सेठ अणी नग्रे हुआ, वले वाणियो घन्नोजी ॥ बेन सुभद्रा संजमलीनो, मुक्त जावणरो मन्नोजी ॥ अ. च. ११ ॥ मा सतक श्रावक इण नग्रे हुआ, श्रावक पडमां धारीजी ॥ करणी करने कर्म खपाया, हुआ एका भवतारीजी ॥ अ. च. १२ ॥ सेठ सुदरशन सेगो श्रावक, वीर वांदणाने चाल्योजी गेला मांहे अर्जुन मिलियो, नेरयो कणीसे पाल्योजी ॥ अ. च. ॥ १३ ॥ अर्जुन माली लारे हुओ, वीर जिनेन्द्रने भेटयोजी ॥ मालीने दिराई दिक्षा, डुख नग्रीनो मेटयोजी ॥ अ. च. १५ ॥ मेघकुंवर सेणकनो बेटो, लीनो संजम भारीजी ॥ करदीनी काया व्यावचानिमन्ते, कीदी दोय ने-

णानीसारोजी ॥ अ. च. ॥ १६ ॥ सेणक राजा समकित धारी, कीदो धर्म उद्योतोजी ॥ एक घरमे दोय तितकर होसी, दादोने वले पो· तोजी ॥ अ. च. १७ ॥ उत्तम पुरुष केई आई उपज्या, श्रावकने वले साधूजी ॥ भगवन्तानी सेवा कीदी, धन मानव त्नवलादोजी ॥ अ. च. १८ ॥ सालण नायक तीरथ थाप्या, सास्ता सुख पाव्याजी ॥ ऋषीरायचन्द कहे केवल पाव्या, मुक्त मेलमे जासीजी ॥ अ. च. १९ ॥ समत अढारे गुण चालीसे, नागोर सेर चोमासोजी ॥ पुज जेमलजीरापरसादथी, कीदी जोड हुला सोजी ॥ अ. च. २० ॥ संम्पुर्ण.

अथ गजल विषय पद लिख्यते

(१३) पद गजल

दर्श अपना पियानेमी दिखादोगे तो क्या होगा ॥ तेरा दरशनकि मै प्यासी, रहीनासुद

बुध तनकी ॥ अगर अमीरस कृपा करके, पिला दोगे तो क्या होगा ॥ द. १ ॥ कठिन है संसार कारस्ता, हर एक पगपर लगे ठोकर ॥ अगर मुक्तिके मार्गमे, लगा दोगे तो क्या होगा ॥ द. ॥ २ ॥ कर्म घाती जो है शत्रु, सताते है मुझको हरदम अगर तो ज्ञान केवलसे, हटादोगे तो क्या होगा ॥ द. ३ ॥ पशुपाकि छुटा येहै, हजारो दस्त कातिलसे ॥ अगर कर्मोके बन्धनसे, छुटा दोगे तो क्या होगा ॥ द. ॥ ४ ॥ रामदास राजुल करे विन्ती, मुक्तिके पदके कारण ॥ तुम्हि हो नाथ नाथोंके, दिलादोगे तो क्या होगा ॥ ॥ दर्श ॥ ५ ॥

(१४) उपदेश

लगाता दिलतु किसपे है, जहांमें कोन तेरा है, सभी मतलबके गर्जी है, क्यो कहता मेरा २ है ॥ ल. ॥ १ ॥ छिपे रहतेथे महलोमे, हो ग-

हतांन एशोमे ॥ दिखाते मूहना सूरजको, उस-
कोभी कालने हेरा है ॥ ल. २ ॥ मिलके कुम-
ति वदख्वाहने, पिलादी सराब तुझे मोहकी ॥
खवरना उसमे पडती है, कियहां चन्दरोज डेरा
है ॥ ल. ३ ॥ कहां तक यहां लुभाओगे, किआ
खिरजाना तुमको वहां ॥ उठाके चश्म तो देखो,
हुआ सिरपर सवेरा है ॥ ल. ४ ॥ गुरु हीरा-
लालजीके परशाद चौथमल कहे जो चाहो सुख
॥ दयाकी नावपर चढजा, यहां दरियाव गहरा
है ॥ लगा. ॥ ५ ॥

(१५) उपदेश

अरे अज्ञानमे रहकर, क्यों नरभव गमाते
हो ॥ सच्चा दया धर्म श्री जिनका, अमलमे
क्योनी लाते हो ॥ टेर ॥ छे कारणसे करे हि-
न्सां, आचारंमे कही जिनवर ॥ अहित समाकित
काहोवेनाश, पाठको क्यो लुकाते हो ॥ अरे ॥

॥ १ ॥ असंख्या है जीव फूलोमे, तृष्लानन्द फर्माया ॥ जरातो सोच ऐ बिरादर, अनाथको क्यो सताते हो ॥ अरे ॥ २ ॥ चईयेका अर्थ एक प्रतिमा, फक्त हुज्जतसे करते हो ॥ करो आवेशये हमसे, क्यो मुहकी वात वनाते हो ॥ अरे ॥ ३ ॥ प्रतिष्ठा नहीं करी साधु, नही श्रावक करी पूजा ॥ नही है मुल सुत्रोमे, क्यो मुरखको बहकातेहो ॥ अरे ॥ ४ ॥ हुए बाल खेलमे गुलतान, नही मानोगे तुम हरगिज ॥ अ-व तुम्हारी दाल नगलनेकी, क्यो ईर्षा द्वेष बढाते हो ॥ अरे ॥ ५ ॥ जेनधर्मी कहलाके, तुमविष विकारमे वर्तो ॥ आश्चर्य मुझको होता है, क्यो जलमे लाय लगाते हो ॥ अरे ॥ ६ ॥ पडो मत पक्षमे भाई, मिला मुशकिलसे ये नरभव ॥ करो तुम तत्वका निर्णय, काहेको धोका खाते हो ॥ ॥ अरे ॥ ७ ॥ प्राणी रक्षा करो सबमिल, अना-

एक मिन्ट, उपाय क्रोडकर ॥ अजल ॥ ३ ॥ क्यो न बादशाह वोहो, लाखो फोजका सरदार ॥ बडे बडे घमंडीकीन्नी, नाचली अकड ॥ अजल ॥ ४ ॥ गुरु हीरालाल प्रसाद, चौथमल कहे तुझे ॥ करे जाप वृध मानका, तोपावे मोक्षघर ॥ अजल ॥ ५ ॥

(१८) शिक्षा ज्ञान प्रकाश

सबोमे बडा ज्ञान है, इसको तु पढपढ ॥ ज्ञानके विना न मोक्ष, उपाय क्रोड कर ॥ टेर ॥ पानीमे मच्छ नित रहै, नारीके जटा शिशं नाखुन लम्बे देखलो, सिंहोके पंजपर ॥ सबो ॥ ॥१॥ बुग ध्यान रटे रामशुक, गाडर मुन्डात है येनाचे हिन्ज राख तन, लपेटता है खर॥सबो॥ ॥ २ ॥ ऐसे किये प्रभु मिले तो, इतने देखले ॥ वहक्रौहवद शख्सके, फासेमे आनकर ॥ ॥ सेवा ॥ ३ ॥ हेवान इन्सानमे, क्या फर्क है

वता ॥ ये ज्ञानकी विशेषता, जुझोसे जायटर ॥ सवो ॥ ४ ॥ पाकीजा दिलको कीजिये, रख रहीम जानोपर ॥ जिन वचनका सेनक लगा, चलराहनेकपर ॥ सवा ॥ ५ ॥ गुरु हीरालाल प्रसाद, चौथमल कहे तुझे ॥ तो वेशक मिले-गा मोक्ष, तुझे वेकिये उजर ॥ सवो ॥ ६ ॥

(१९) उपदेश

दुनियासे चलना है तुझे, चाहे आज चल के कल ॥ अमुल्य वक्त हाथसे, जाता है पल पे पल ॥ टेर ॥ आता है स्वास जिस्मे, प्रभु रटना हो तो रट ॥ चेत चेत जल्दा आई, वहार की फसल ॥ दुनिया ॥ १ ॥ हुआ दिवाना ए शमे, आकवतका खोफनी ॥ सिरे वरे तरे सदा, धुमता अजल ॥ दुनिया ॥ २ ॥ नेकी वदीका सामान, उठाके पीठपे ॥ खुद कोही चलना होयगा, बडी दुरकी मंजिल ॥ दुनिया ॥ ३ ॥

आबेकफे दस्तके, ज्यो जाती है जिन्दगी ॥ ब-दकारकी वदमे गई, सखी नेककी सफल ॥ ॥ दुनि. ॥ ४ ॥ कहे चौथमल गुरु वकील, आगाही दे तुझे ॥ करले अपील जीव, ओजुं हाथमे मिसल ॥ दुनियां ॥ ५ ॥

(५०) उपदेश

दुनियाके बीच आय तेने, क्या भला किया क्या भला कियारे तेने क्या भला कीया दुनियाके बीच आय तेने, क्या नफा लिया॥दुनिया॥ये मात तात कुटुम्ब बीच, तु लुभाय रहा ॥ जुल्म जहर का पियाला, तेने हाथसे पिया ॥ दुनिया. ॥१॥ अफसोस तेरी तकदीरपे, नरभव गमादिया ॥ इस दुनियासे एसा गया, पैदा भया न भया ॥ दुनिया ॥ २ ॥ तिलमोकी खान पायके, मो-ताज तू रया ॥ दरियावमे रहे प्यासे, वो पछता एगाजिया ॥ दुनि ॥ ३ ॥ लायाथा माल बांध,

वो, थापे खरच कीया. अब आगेका सामान, तेने साथ क्या लीया ॥दुनि०॥४॥ गरू हीरालाल प्रसाद, चोथमल चेता रया ॥ करो दया दान पावो मोक्ष, दुःख नहीं तिहां ॥ दुनि० ॥५॥

(२१) महाबीरजीकी गजल

वृधमानकी नोकरवाली, फेररे जिया ॥ सुमरनसे आनन्द ठाठ सुबहोते हैं तियां ॥टेर॥ चोविसवां जिनराज, महाबीरजी भया॥ सिधा-रत महाराजजी, घर जनम आलिया ॥ व्रध ॥ १ ॥ रूप अनूपम आपको, त्रसलादे जानिया ॥ पदवी तिर्थंकरकी वरी, घणो ज्ञान लाविया ॥ व्रध० ॥ २ ॥ प्रभुको लेई हाथ इन्द्र मोछवने लाविया ॥ सनान करातां प्रभु गिरको धुजा-विया ॥ व्रधमान० ॥ ३ ॥ पाछेसूं महाबीर नाम सुर इन्द्र थापिया ॥ बलमें अनन्तो बल समण तपसीजी बाजिया ॥ व्रध० ॥ ४ ॥ वाला

करो हितचित्तसे, जीनन्द ध्याविया ॥ दुख मेटि जन्म मरणका शिव सुख पाविया ॥ व्रध० ॥५॥ सासनका सिरदार, तिलक ज्यों विराजिया ॥ एकवीस सहस्र वरसका, सासन चलाविया ॥ व्रध० ॥ ६ ॥ उपद्रव आव्या खुब, परीशाकं ... विया ॥ अनारज खेतरमें जाय, कर्म कर्जा काविया ॥ व्रध० ॥ ७ ॥ पाटानमें मुखपा... श्री सुधर्मा गाजिया ॥ महावीरके वजीर श्री गोतमजी वाजिया ॥ व्रध० ॥ ८ ॥ गुणतो घणा है नाथ, किम जावहो कया ॥ क्रोड जिव्हा पार नहीं तो एक जिव्हा कया किया ॥ व्रध० ॥ ए ॥ ये धवल मंगल गजल गाय हर्षते हिया ॥ जावद गुरुप्रसाद घासी लालगारया ॥ १० ॥ समत उगणीसे जाण सतसट साल गाविया ॥ खोट कसर जोहोय कवीजस्त सुधारिया ॥ व्रध० ॥ ११ ॥

(२२) उपदेश. गजल

क्या अमोल जिन्दगी तूयत्ननी करे ॥ सूता है मोह नींदमें जगाऊं किसतरह ॥ टेर ॥ कंचनका पलंग सेजपे सुन्दर नेह धरे, लगा भोगका तेरे रोग नसीहत क्या करे ॥ क्या अमो० । १ ॥ ले मुखत्यार नामा औरका, वकील हो फरे ॥ खुद मिसल कापता नहीं, समझ ये धरु ॥ क्या अमो० ॥ २ ॥ मायाके बीच अन्ध तुझे, सूझनापरे ॥ करतामजाक औरकी जुल्मो से नाडरे ॥ क्या अमो० ॥ ३ ॥ क्या किया ना लिया साथ, रहे खजाने सहु धरे ॥ पूछेगा जवांसे जवाब, क्या देवेगा उसघरे ॥ क्या अमो० ॥ ४ ॥ गुरु हीरालाल प्रसाद, चौथमल कहे सिरे ॥ करकबज माल धर्मका संसारसे तिरे ॥ क्या अमोल० ॥ ५ ॥

२३ गुणग्राम स्वामी महावीर

अर्जी पे हुकम श्री महावीर चढा दोगे तो क्या होगा ॥ मुझे शिवमेलके अन्दर बुलालोगे

तो क्या होगा ॥ टेर सिवातेरे सुनेगा कौन, मुझसे गरीबकी अर्जी ॥ मुझे बदफेलके फन्दसे छुडा दोगे तो क्या होगा ॥ अर्जी ॥ १ ॥ जगं वहा पेन खाली क्या, क्यातक दीर है ऐसी ॥ नमालूमक्या सबब शक्हे, मिटादोगे तो क्या होगा ॥ अर्जी० ॥ २ ॥ पडी है नाव भव जलमें चले वहांमोह की सर सर ॥ करके महरवानी, आप तिरादोगे तो क्या होगा ॥ अर्जी ॥ ३ ॥ जोहै तेरी मदद मुझ पेतो, दुशमन कुछ नहीं करता ॥ भरोसाही तुम्हारा है, निभा लोगे तो क्या होगा ॥ अर्जी ॥ ४ ॥ गुरू हीरालालजी गुणवन्ता, वताया रास्ता वहांका ॥ खमा है चौथ मल आकर बुला लोगे तो क्या होगा ॥ अर्जी ॥ ५ ॥

२४ उपदेश. स्तवन.

॥ १ ॥ स्तवनव पुज्य: मोतीचंन्द्रजीको दे-

शीये, मलामे बेठीहो राणी कमला वतीया रं-
गत, सांभलहो श्रावक पुज्य मोतीचंदजीमे
गुण है अति गणा. ॥ याटेर ॥ सेर रतलामना
मुनीजी वासीया, औसवंस अवतार ॥ मेयारा
कुलमै मुनीजी जनमीया, दिपु दिपु करेहो
दीदार. सांभलहो श्रावग. ॥ १ ॥ संसार पक्षमै
पीताजी लक्षपती, पुत्रने दीया शुत्र भणाय.
भणी गणीने जठ पंडीत थया. लगपण कीनो
हे मन ज्गाय ॥ सा० पुज्य ॥२॥ बनडा बनाई
नारि परणावीया, पण उतम पुरशातो उचाथाय
वैराग भाव आया नीर्मला, गरुदेव धर्मने शीश
नमाय ॥ सा० ॥ ३॥ वैरागी बनमा नीषरा पा-
दरा, आया हैगाम भणाय. बीरभाणजी गरुने
भेटीया, बे कर जोमीने शीश नमाय. ॥ सा०॥
॥ ४ ॥ संजमतो लीनो पुज्यजी दीपतो, दो
वर्श रयाहो गरुजी पास, एकल बीहारी पुज्य-

जी बीछरा. ढीलाई देषी थया उदास. ॥ सा० ॥
॥ ५ ॥ एकल बीहारी आया मालवे. मुनीवर
काकझा सुत, देवा पंथीहो श्रावक थागणा, जारी
कीरीया गणीहो अदभुत. ॥ सा० ॥ ६ ॥ अ-
णा श्रावकने पुज्यजी नमावीया. जावदकणाजे
को नीमचजाण, और बंमोरो ईत्यादीक गणा.
जारी कलमाकीनी छे पुज्य प्रमाण, ॥ सा० ॥
॥ ७ ॥ तपसा एकांतर पुज्यकी दीगणी, एक
पछे वडी बारे मास, जोरलगाई जंझा रोपीया,
जीन धर्मना चीत हुलास, ॥ सा० ॥ ८ ॥शीष
जो थयाहो जारे तेजशीगजी, रणवासे जावे
जेसै सुर, जीम पुज्य तेज आई पादरा. संजम
लीयोहो आप हझुर. ॥ सा० ॥ण॥ पाछे पाटो
घर पुज्य तेज सीगजी, षुब दीपायो जैन धम,
परीसा सही नेषेतरकाडीया. गीतार्थ होई ने
तोडया कर्म. ॥ सा० ॥ १० ॥ समत १९ साल

गुणंतरे: गरु मोटाहो पुज्य थारचंद, तीण-
रापरसादथी जावद जोमीयो, घासीलालके
हरक आनंद. ॥ सा० ॥ ११ ॥ ईती सम्पुर्ण.

(२५) नसीहत उपदेश. गजल

कहताहूं भगवानके मुखारका बचन, सुन
धार लेगे जीव उने वहोतहै धन धन ॥ टेर ॥
जहर तो दुनियाके बीच बहोत है धरा ॥ परज-
बर जहर जाणजो ये क्रोधका खरा ॥कहता॥१॥
॥ पृथ्वीके उपर देखलो, अमृत है सही जिनरा-
जतो अमृत क्षमा रसने कही ॥ कहता हूं०
॥ २ ॥ संसार सागर मायने, दुखियेजो वहोत
है ॥ जिनराजने फरमाया, जादा दुख लोभहै
॥ कहताहूं ॥ ३ ॥

राणाजो राजा बादशा मुल्कोंके सिर मोड
सन्तोष बिन सुखी नही, खजाने गये छोड ॥
॥ कहता ॥ ४ ॥ बन्दूक तोप तलवार सेजो

मारता दुशमन ॥ उनसेभी अधिक जाणजो ये पापके लच्छन ॥ कहता हुं० ॥ ५ ॥ पैसेके मन्त्री जक्तमे ठेह देयगा आखर ॥ जिन धर्म मंत्री जाणलो शरीर पेपाखर ॥ कहता हूं० ॥ ६ ॥ जुगजाल वीच मनुष्यको भय है वडे खरे ॥ उनसे भी अधिक जाणलो कुशीलीया घरे ॥ कहता० ॥ ७ ॥ ओपमा वतीस कही शीलजो तणी ॥ विघ्न निवारण है खरी, और सायता घणी ॥ कहता० ॥ ८ ॥ हिदायते है आठ प्रभु वीरने कही ॥ सुन धार लेगे जीव न्नला होयगा सही ॥ कहता ॥ ए ॥ उगणीसे समत जाण और गुणतरे सही॥जावद गुरुप्रसाद घासीलालने कही ॥ कहता हूं० ॥ १० ॥

(२६) स्तवन गुण ग्राम

रंगत लारे लागोरे यो पाप करम दुख देलो आगोरे. यो देशी

सतगुरु मारारे सतगुरु म्हारे फरमावे वाणी अमृत धारारे सतगुरु म्हा० ॥टेर॥ मात पिता अरु कुटम कबीला, घरकी सुन्दर नारोरे ॥ स्वारथ विना नहीं कोई थारो, ज्ञान विचारोरे ॥ सतगुरु० ॥ १ ॥ कूडकपट कर धनको जोडे सहे भूख और प्यासोरे ॥ तू जाणे या लारे आसी, छोड सिधास्योरे ॥ सतगुरु० ॥ २ ॥ घडी घडीयो आयु छीजे, खबर पडे नहि कांईरे ॥ मनख जमारो मुशकिल पायो, भली पुन्याई रे ॥ सतगुरु० ॥ ३ ॥ इम जाणीने धर्म करो तुम, परभव साथ सखाई रे ॥ तेजमल कहे सतसट साले, उदयापुर मांहीरे ॥ सत गुरु म्हारा० ॥ ४ ॥

(२७) गुणग्राम (उपरोक्त) रं.

संभव स्वामीरे २ प्राणेश्वर मारो अन्तर जामीरे ॥टेर॥ राय जिथारत नन्द नगीना, सन्या

दे राणी जायारे॥ दुकाल सम्याको सम्मजो कीनो, गर्भमे आयांरे ॥ संभव० ॥ १ ॥ संभव स्वामी मुझ सिरनामी, संभव मोहन गारोरे ॥ संभव जिन जी हिवडे वसियो, संभव तारोरे ॥ संभव० ॥ २ ॥ संभव २ नाम जप्यां सूं आदर बहुलो पावेरे ॥ उलट बातकी सुलटी होवे जग जस गावेरे ॥ संभव० ॥ ३ ॥ गुरु हमारा इन्दरमलजी जेठ गुणंतर मांहिरे ॥ तेजमल कहे शहर जावदमां जोड बणाईरे ॥ संभव० ॥ ४ ॥

१८ स्तवन गुणग्राम गणधरजीनो

गणधर प्यारारे २ श्री त्रिरजी नंदजीका, शिष्य इग्यारारे ॥ गणधर प्यारारे ॥ टेर ॥ इन्द्र भुतीने अग्निभुती, वायुभुती सुखदाईरे ॥ पांच पांचसे निकल्या लारे सगला भाईरे ॥ गणधर ॥१॥ विगत भुतीनु सुधरमां स्वामी, वीर पाटवी जाणारे, मंडी पुत्रने मोरी पुत्रजी, अकंपित आणोरे

॥ गणध० ॥ २ ॥ अचलजीने मेतारजजी. ढेला श्रीपर भासोरे ॥ नाम जप्यां सू आनन्द वर्ते, वं-चित पासोरे ॥ गणध० ॥ ३ ॥ गुरु हमारा इन्द्र मलजी, नीमचसेर पदार्या रे ॥ तेजमल कहे जेठ गुणान्तर, चवदस लारेरे ॥ गणधर० ॥ ४ ॥

(२१) गजल

सखीसे केतयूं राजुल किधर येसाम वालाहै ॥ टेर ॥ अरे क्या चूक पडी हमसे क्यो रथको फेर चाला है देखनैमीको दिल राजी फेरती राज माला है ॥ सखीसे० ॥ १ ॥ कोन सखीने नाथ मेरा, भरमके बीच डाला है ॥ मै जोबनरुप अनूपीतरी सुरतरसाला है ॥ सखीसे ॥ २ ॥ आठ भवकीये प्रीत होती केम गोडी कृपाला है ॥ जरातुम देखलो मोकूं नाथ सेवाके लाला है ॥ सखीसे० ॥ ३ और वर नहीं सखी मेरे फक्त ये नेम काला है घनराजुल सती मोटी पिया सीयलका

प्याला है ॥ सखीसे० ॥ ४ ॥ सेर जावद वसत
पंचमी गुरु प्रसाद माला है ॥ तेजमल गुणन्तर
साले जोड कीटक साला है ॥ सखीसे० ॥ ५ ॥

२० स्तवन सिद्ध शीलाको

होजी सिद्ध शीला सगलासरे, जोजन पेता-
लीस लाख हो प्रभु० ॥ उरजण सोनामें ऊजली
बिस्तार नचाईमें भाखहे प्रभु शिवपुर नग्र सु-
हावणो ॥ टेर ॥ १ ॥ माने जावण केरी कोड
हो, प्रभु पास जिनेसर बीनमु ॥ माने कर्म ब-
न्धनथी छोड हो ॥ प्रभु शिवपुर ॥ २ ॥ थानके
सदाईकाल छे सास्वतो ॥ मिल रही जोतमे
जोतहो ॥ प्रभु तला लीन एकमे अनेक छे ॥
जाने कदीयन आवे दुःख ॥ हो प्रभु० ॥ ३ ॥
जठेजन्म जरामरण कोय नहीं । नही चिन्ता
नही शोक हो ॥ प्रभु, सासता सुख साता घणी
॥ ज्यारे कदीयन पडे विजोग हो ॥ प्रभु शिव०

॥ ४ ॥ जठे भूख तिरखा लागे नही । तिरपत रहे सदा भरपूरहो प्रभु ॥ जणारत उपजे नहीं । नहीं मेलेभव अंकूरहो ॥ प्रभु शिवपुर ॥ ५ ॥ जठे ठाकुर चाकर को नहीं । सगला सरीखा होय हो प्रभु ॥ केवल ज्ञान दर्शने करी ॥ चव-दे राजस्या छे जोय हो ॥ प्रभु शिव० ॥ ६ ॥ जठे सेठ सन्थापती मीतरवी । सुख भोगवे मं-डली कराय हो ॥ प्रभु ॥ बोहला सुख बलदेव-ना ॥ वासुदेव तुले नहीं थाय हो ॥ प्रभु शिव ॥ ७ ॥ जठे हय गय रथ लख चौरासी ॥ पाय-दल छिनवे क्रोड हो प्रभु ॥ चवदे रतन नव नी-द गेरे एसा नरपत केराईद्र हो ॥ प्रभु शिव० ॥ ८ ॥ होजी चौसट सहेस अंतेवरा । नाटक पडेविध बत्तीस ॥ हो प्रभु । मेलबयालीस भो-मिया । सहु राजनमे विशेष ॥ हो प्रभु शिव० ॥ ९ ॥ हो जीवीश तारस्युं करूं, वरतंत छे

घणो । जंम्बुद्वीप पंनतीमाय हो प्रभु । जुगल्या केरो वले जाणजो । जोडले जन्म नरनार जी ॥ प्रभु शिव ॥ १० ॥ होजी जीवा भगोती मे भाखीयो ॥ वलेप्रशण व्याकरण मायहो प्रभु ॥ ज्ञानी देवा दाखियो । कल्पवृक्ष पुरे ज्यांरी आसहो ॥ प्रभु शिव. ॥ ११ ॥ होजी चक्रवृतने जुगल्याथका, सधलाई सुरांरा सुख हो प्रभु ॥ इन्द्रतुले लागे नहीं । सगलाई देवांरा सुख हो ॥ प्रभु शिव ॥ १२ ॥ होजी इन्द्र थकी ईदका कया । नीगरन्थ मोटा अणगार हो प्रभु ॥ सदाई सुख सन्तोष मे रहे । जाने जोग जाण्या वीमणजीसो अहारहो प्रभु शिव० ॥ १३ ॥ होजी अनन्ताही सुख अरिहन्तना । वले सिध बडा सरदार हो प्रभु ॥ तीन लोकमे कोई ओपमा लागे नहीं । माने केतां नु आवे पार हो ॥ प्रभु शिव० ॥ १४ ॥ होजी अन्तरजामी आपहो ।

पर दुःखरा कापणहार ॥ हो प्रभु ॥ आस करी मे आवियो । माने भवसागरथी तार हो प्रभु शिव० ॥ १५ ॥ होजी तीनुही कालरा देवता। रतनारे विमाणे वेसहो ॥ प्रभु ॥ जोड लगावे सिधतणी नहीं आवे अनन्त मे भाग हो ॥ प्रभु शिव० ॥ १६ ॥ होजी अससेणराय जीरानन्दा, वामादेराणी अंगजातहो ॥ प्रभु ॥ पास जिनेस्वर वीनमुं मारो आवागमन नीवार हो प्रभु शिव० ॥१७॥ होजी समत अठारे विसेसमे फलोदी कियो चौमासहो ॥ प्रभु० ॥ पुज जेमल जीरा परसादथी रिखराय चन्दजी किया गुणग्राम हो ॥ प्रभु शिव० ॥ १८ ॥

(२१) स्तवन

भरतजी बाहुबलजी प्रतिकहे छे (माड)

हो मुज बन्धव प्यारा कुरणा आणी अर्ज लो मानीजीराज ॥ टेर ॥ भरत संजमकी खबर

सुणीने छुटी आसुकी धार ॥ बन्धवसू यूं भीनवे कांइ, मतलो संजम भार हो ॥ मुझ बंधन० ॥१॥ अठाणु आगे हुआरे, पूर्वपिताके पास ॥ ऐसो विचार मत करो माने आपतणो विश्वास हो ॥ ॥ मुझ ॥ १ ॥ षोसगलोई राज लो, छत्र चंवर ढुराय ॥ आप रेवो संसारमे कांई अर्ज कबुल कराय हो ॥ मुझ० ॥ ३ ॥ चक्र रत्न निज स्थानके, आया नहीं अणी काज ॥ ले असवारी आ लियो कई, ये अनादी राज हो ॥ मुझ ॥ ४ ॥ नगर वनीता जावतां, पग नहीं पडे लगार ॥ माजी साव ने जायने हूं कांइ केहूं समाचार हो ॥ मुझ ॥ ५ ॥ बाहुबल कहे सुनो भरतजी, निकल गया मुझ वेन, गज दन्तावल नही फिरे कांई ये सुराका वेनहो ॥ मुझ० ॥ ६ ॥ इत्यादिक समजाविया संजम लियो हित जाण भरत गया निज सेर वनीता, फेरे अखंडित आणहो

॥ मुरू० ॥ ७ ऊगणीसे छाछटमे, ऊदयापुर चौमास ॥ चोथमल कहे गुरु प्रसादे वर्ते लील विलास हो ॥ मुझ बन्धव प्यारा० ॥ ८ ॥

(३२) स्तवन उपदेश (ऊपरोक्त) रं०

मोटाने एवुं करवो घटतो नथी, मे कहुंछुं पाडी बुंब अती, मोटाने ॥ टेर ॥ आपी हाते वचन बीजाने कहे आसूं थारे काज ॥ मोको आव्या वदली जावे निपटनी आवे लाज॥मोटा॥ ॥ १ ॥ पोते बाग वावीने कोई, ते वाडी मोटी थाय ॥ सींचणकी विरिया जद आवे, टालोखाई जाय ॥ मोटाने ॥ २ ॥ बुडता माणसने पकड निकारे,ला अदविचदे छिटकाय ए विश्वासघा- तीनो प्रभु मुखडो नथी बताय ॥ मोटा ॥ ३ ॥ मोटा थावो माणसोरे पालो बोल्या बोल ॥मोटा ढोल जेवा नथी थावे माहीं पोला पोल ॥मोटा ॥ ४ ॥ अठारे देशना राजा आव्या, चेडाराजा

नीसीड ॥ साधर्मीनो साज आप्यो निज वचना-
नी पीड ॥ मोटा० ॥ ५ ॥ सांचा थावो काचाने
थावो राखो वचन अटल ॥ गुरु हीरालाल प्र-
साद चोथमल, देवे सीख असल ॥ मोटाने०॥६॥

(३३) स्तवन मुनीराज तेजसिंगजीको (लावणीमे

मुनीजी बालब्रमचारीहो, स्वामीजी बाल-
ब्रमचारी ॥ मुनी तेजसिगजी महाराज संथा-
रो । पचक्क लीयो भारी ॥ टेर ॥ ऊंकार लालजी
पिता आपका मातादेऊ बाई थारी ॥ उत्तम
जातमहाजन आपहो दिलके बीच ऐसी आणी
॥ मुनीजी० ॥ होस्वा ॥ १ ॥ जगत सहु सुपने
की माया आप नही परण्या नारी ॥ ओसवं-
सवंमोडी गोतहे, नाम तेजसिगजीहु आधारी
॥ मुनी० ॥ होस्वा० ॥ २ ॥ गाम नकूम की
जन्म भूमिका आप पुरष हो अवतारी ॥ वर्ष
तीस संसारमें रया, फेर मोह ममता टारी ॥

मुनो० स्वा० मु० ३ ॥ आप पदार्या सेर जाव-दमे जाणे छे सब नरनारी गुरु भेटया पुज्य मोतीचन्दजी, मुनी आप पुरुषकी बलिहारी ॥मुनी० स्वा० मुनी ॥ ४ ॥ समत अगारे साल नेऊमें, पंच महाव्रत लीया धारी ॥ हर्कहुओ मुनीबात आपको, जाणे छे दुनिया सारी ॥ मुनी॥स्वा०॥ ५ ॥ साद सादवी श्रावक श्रावका जाणे खुलरही केसर क्यारी ॥ संजम मोरत सीर सातमको, जगतमे पूजे नरनारी ॥ मुनी० स्वा० मु० ॥ ६ ॥ जावदसे गाम नगरपुर पाटण वीछडया, घणा जीव बीना तारी ॥ मुनी ज्ञान ध्यानने घणो दिपायो, आप हुआ बडा उपकारी मुनी० स्वामी० मुनी० ॥ ७ ॥ जीन मार्गतो जोर दिपायो, मुनीश्रीगरूप लीनोधारी ॥ जावदमे तो आप विराज्या जगतमे मेमा हुइ सारी मुनी० स्वा० मु० ८ ॥ दिन सातको पा-

क्यो संथारो वरत्या जे जे मंगलाचारी ॥ कर-
जोडी जोरावर वीनवे सेवियो एसा अणगारी
मुनी० स्वा० मुनी० ॥ ए ॥

(३४) स्तवन मुनी शिवलाल
जीमहाराजको (रंगत झालाकी)

पाचमा आरामे दीपता, हो मुनीवर
शिवलालजी महाराज. वाणी तो मीठी
घणी, हो मुनीवर, साकर दुधनी वार, हीवडे
रुचीरया हो मुनीवर शीवलालजी महाराज
॥ टेर ॥ पिता टीकमचंदजी० हो मुनीवर ॥
घन थाको अवतार ॥ माता कुनणा बाईथा, हो
मुनीवर ॥ जाकी कूख लियो अवतार ॥ हिवडे
रुचिरया हो मुनीवर शिवलालजी महाराज ॥१॥
॥ रेवासी सीर घामण्याना हो मुनीवर ॥ घन
घन थारो भाग ॥ गुरु भेटया दियालचन्दजी
हो मुनीवर जिन धर्म लीनो धार ॥ हिवडे रुचि०

॥ २ ॥ गुरु दीयालचन्दजी इम केवे हो श्रावक ॥ त्याग देवे संसार ॥ दुखमी आरो पांचमो हो श्रावक सुख थोडो दुख अपार ॥ ह्विवडे ॥३॥ वचन सुण्या मुनीवरतणां हो मुनीवर ॥ सेठा-लीनाघार ॥ परणामाकीलेर इम वरते हो मुनीवर ॥ लेसूं संजमभार ॥ ह्विवडे० ॥ ४ ॥ रतलाममें संजम लीनो हो मुनीवर ॥ उत्तम पुरुषां के पास ॥ समत अठारासे इकाणुमेहो मुनीवर ॥ मगसर सूदी चानणी छट ॥ ह्विवडे० ॥ ५ चेलातो आप छे कीदा हो मुनीवर ॥ चतु-रभुजी दे आद ॥ और चेलाको परवार घणो हो मुनीवर दीपरया रूखीराय ॥ ह्विवडे रुचि ॥ ६ ॥ अगड पछे वडी तीनकी हो मुनीवर ॥ रहे डड तापरणाम वाईस परीसा जीतथां हो मुनीवर ॥ लोच छे छे मास ॥ ह्विवडे ॥ ७ ॥ वेला तेला घणा कीदा हो मुनीवर ॥ एकांतर

बारे मास ॥ तपसा तो कीदी घणी हो मुनीवर तीणीरो छे यनपार ॥ हिवडे ॥ ८ ॥ वखाण वाणी वाचतां हो मुनीवर ॥ बरसे अमृत धार ॥ उपदेश तो देवो घणो हो मुनीवर ॥ समझे घणा नरनार ॥ हिवडे ॥ ९ ॥ समत उगणीसे तवीस मे हो मुनीवर जावद सेर मुजार ॥ कर जोडीने वीनमु हो मुनीवर ॥ जोरावरमल चुनीलाल ॥ हिवडे रुचीरया हो मुनीवर शिवलालजी महाराज ॥ १० ॥

(३५) स्तवन नसीहत

सुमरण नितकीजे रे प्राणी, थाने कहे छे हो गुरु ज्ञानी ॥ सुमर्ण ॥टेर॥ भजन श्री जिनराजका सेरे, और भजन मती जाणो ॥ हिंसा मारग वरजीने प्राणी, निर्वद मारग आणो ॥ सुमरण ॥ १ ॥ काची काया काची माया, काचो जोवन जाणो ॥ काचो हे संसार ऊवरतो ॥

साचो जिन धर्म प्रमाणो ॥ सुमरण ॥ २ ॥
काम भोग झूठा कथा सधामे खुचता होवे हा
णो ॥ मीठी खाज खुजावतां सकाई, पाछे दुख
की खाणो ॥ सुमरण ॥ ३ ॥ भजन किया सं-
सारमे सरे, सुख पावे अति जीव ॥ अणी भव-
मे तो वधे कीरती, परभव मिले शिव पीव ॥
सुमरण ॥ ४ ॥ भजन भजन तो सब कहे सरे,
भजनको बडो विचार ॥ भजन भाव जेनाके
सेती कयो साम्ब मुझार ॥ सुमरण ॥ ५ ॥ दा-
नशील तप भाव एरादे, सोइ सुरहै सांचो ॥ ज्ञा-
न दरशण चारित्र विना मणी खोय हाथ लियो
काचो ॥ सुमरण ॥ ६ ॥ देख जघदश बोलमा-
यला, बोलकिताई कपाके ॥ सांचा जिनन्द्रने
ओलखीया, क्यो आस जडसे राखे ॥ सुमरण
॥ ७ ॥ भजन भक्ति कर मोक्षमें सरे, केही ग-
या नरनार ॥ केइक जीव सुरपद गया सरे, के-

यक जावणहार ॥ सुमरण ॥ ८ ॥ समत उग-
णीसे तिरसटमे सरे माडल गढके माही ॥ घा-
सीलाल और इन्द्रमलने हर्षे जोड बणाई ॥
सुमरण ॥ ९ ॥

☞॥ अथ वाजिंदका दोहा लिख्यते) हांरे
एक चेत चेतरे चेत अज्ञानी चेतरे हांरे एक
कांकड उभी फौज वुहारथा खेतरे । हांरे एक
दारू गोरी नार अडब्बा छूटसी ॥ पण हावा-
जिंद कंचनवरणी काय जडाके टुटसी ॥ १ ॥
हारे एक भजो सुवाहर नामके बैठो ताकमे,
हारे थारो दिनाचारको रंग मिलेगा खाकमें ।
हांरे थारो साहब वेग संभाल कालशिर आवेरे
पिणहां वाजिद जमके हाथ गिलोला पटकन
हाररे ॥ २ ॥ हांरे एक दया समो नहीं धर्म ज-
गतमे औररे । हांरे एक सर्व धर्मको मर्म दीप-
ती कोररे । हांरे एक दया मोक्षको राह पालजो

वीरजी ॥ पिणहां वाजिंद जहां दया जहां जा·
णजो जगदीशजी ॥ ३ ॥ हां रे एक राजावीर
विक्रमादीत तपेछो तेजरे । हां रे वांके चंवर ढुरे
था चार सिंहासन सेजरे । हां रे वांके तुरी पर·
गना गांव हजारा लख है । पिणहां वाजिंद वो
नर गया मसाण लगाया खक है ॥ ४ ॥ हां रे
एक बादशाहीकी सेज पथरना पाथरा हां रे एक
हीरा जड्या जडावक पाया खाटरा । हां रे वांके
हुरमाउ बी हजुर करे ने वंदगी । पिणहां वाजिंद
विना भजां भगवान पडोला गंदगी ॥ ५ ॥ हां रे
एक दासी नबी आयक दोड्या रावरी । हां रे
बीके ओढन दखनीचीर । फिरे ननावरी हां रे
एक गहली करे गुमानक गंधी देहनो । पिण·
हां वाजिंद नीर निमाणे जायक पाणी मेहनो
॥ ६ ॥ हां रे एक धन जोबनको गर्व्वन कीजे
वीरजी हां रे एक छप्पर बुढा मेह कहां गया

नीरजी । हां रे एक देखोरे संसार सकल सहु झूल है । पिणहां वाजिंद पाणी पेली पाल बंधे सो सूल हे ॥ ७ ॥ हां रे एक रोष सगाको फूलक वनमें फूलियो. हां रे एक झूटीसी माया देख जगत सहु झूलियो. हां रे धारी माया लेखे लगाय पवनका पेखना पिणहा वाजिंद दुनियामे दिन चार तमाशा देखणा ॥ ८ ॥ हां रे एक तीतर चुगवा जाय विचारो मारमे, हारे एक कांटो उलझो पाख पडयो एक वाडमे । हां रे वांको जीव गयो घबराय कबाजी हो गई पिणहां वाजिंद जेमयो कंचन लूटके कासी रहगई ॥ ९ ॥ हां रे एक उसकी धरती देख बीजना वोविये, हां रे एक मुरखने समजाय ज्ञानना खोवीये । हारे एक लीमने मीटा होय सीच गुड घीयसे । पिणहां वाजिंद जांका पडया सुभावक जासी जीवसें ॥ १० हां रे एक डेडीसी

पगडी बांधे जरोखे जाकता हांरे एक ताता तुरी पलाण चोवटे डांकता हांरे वांके लारां चढती फौजनगारा वाजता । पिणहां वाजिंद जाने ले गयो काल सिंघजुं गाजतां ॥ ११ ॥ हांरे एक दोय दोय दिपक जोय मंदरमे पोडता हांरे एक नारी हंदानेह पलक नही छोडता । हांरे एक तेल फुलेल लगायक देही चामकी पिण हां वाजिंद गरद मरद हो जाय दुहाई रामकी. ॥१२॥ मोर्यो करे किलोलके चमके बीजरी । हांरे मारा पीव गया परदेश मुझे क्या तीजरी हांरे एक ओरां कारंग राग मुझेना देखना. पिणहां वाजिंद अपने पिउसे काम और नहि पेखना ॥ १३ ॥ हांरे एक शिर पचंरगि पागक जामा जरकसी हांरे एक हाता लाल कवान कमरमें तरकसी हांरे एक घरमें चंगी । नार बतावे आरसी पिणहां वाजींद वो नर गया मसान पढंता पारसी

ठजूंका सोरका, पिणहां वाजिंद चाले जीणी चालक लगन चोरका ॥ २२ ॥ हांरे एक आज जसो नहि काल कहतहुं तुझकु आवे वैरी जाण जीवमें मुझकुं, हांरे एक देखत अपनी दिष्टखता क्यों खातहै । पिणहां वाजिंद लोहा कासा ताव चल्या क्यों जातहैं ॥ २३ ॥ हांरे एक घमी घमिघमीयालपुकारा कहतेहैं हांरे एक आक गइ सववीत अलपसी रहतहे, हांरे एक सोवे कहा अचेत जाग जप पीवरे । पिणहां वाजिंद जाणा आजके काल वटाऊ जीवरे ॥ २४ ॥ हांरे एक वमा भयातो कहा—वरस सौ साठका । घणा पढ्या तो कहा चतुर विधि पाठका गपा तिलक वणाय कमंमल काठका । पिणहां वाजिंद एकने आया हाथ पछेरी आठका ॥ २५ ॥ हारे एक फरीते निशान नगारा वाजते, हांरे एक आणी फिरे चहुओर चले नर गाजते; हांरे एक हाथा

दिया दानकिया मुखरामरे । पिणहांवाजिंदई सुख निजरा देख भजनका कामरे ॥ २६ ॥ हांरे एक मनकुं जरमे मत्त मरेतो मारिये, हांरे एक कनक कामनी कलंक टले तो टालिये, हांरे एक साधां सेती प्रीत पलेतो पालिये, पिणहां वाजिंद राम भजनमे देह गलेतो गालिये ॥२७॥ हांरे एक सिरपर लंबाकेस चाले गजचालसी । हांरे एक हाथो गय शमशेर ढलकती ढालसी, हांरे एक एताभी अभिमान किहां ठेरायतो । पिणहां वाजिंदज्यों तीतरपरबाज, झपटले जायतो ॥ २८ ॥ हांरे एक जलमे झीणा जीवतो वह होयरे, हांरे एक अन छाण्यो जल आप पीओ मत कोयरे । हांरे एक कांठे कपरे गाने विनाना पीजिये । परहां वाजिद जीवानी जलमांय जुगतसूं कीजिये ॥ २९ ॥ हांरे एक मुका उरबल देख मुख ना मोभीये, हांरे एक जो

तुमे आखी देयतो आघी ताभोये, हांरे एक आदीकी अदकोर, कोरकी कोररे, पणहां वाजीद,अन्नसरीका दान नही कोइ औररे ॥३०॥ हारे एक मुखसे कयान राम, दया नही गटरे, हांरे एक घरमे नाही अन्न फिरे कही सवरे हांरे एक माथे देदे बोज इरकु ताभीया, पी- णहा वाजीन्द; बीना भजा भगवान याही पीठाणीया ॥ ३१ ॥

(गजल.) सुणो सुजान सतकी यह कैसी वहार है । सतके विना मनुष्यका जीना धि- क्कार है ॥ टेक ॥ आना हुवा हरिचंदका जल लेने कूपपे । रानी भी आई उस समय पनघट पनिहा रहे सुणो सुजान सत्तकीये केसी वहा- रहे ॥ १ ॥ पडी निगाह राणिकी अपने प्राणना- थपे । तनमे देख दूबला करती विचार है । सु- णो० ॥ २ ॥ आंखोंमे जान आलगीहै क्या ग-

जब हुवा, गुलहुस्न वोकहां गया, कहाये दिदार है ॥ सुणो० ॥ ३ ॥ गुरू हीरालाल प्रसाद चौथमल कहे सुनो अपना हुवेसो आपका करता विचारहै । सुणो० ॥ ४ ॥

॥ स्तवन राजा हरिश्चंदको, राग वणजारो ॥

कहे तारा अर्ज गुजारी पिउचाकरनीमैं थारी टेक ॥ मेरे शिरके ताज कहावो थें इतनो संकट उठावो, हाय देखो तकदीर हमारी । पिउ चाकरनी में थारी ॥ १ ॥ कहां राज तख्त भंडारा । कहां मणि मोतियनके हारा । करो कमौने पनिहारी पिउ चाकरनीमैं थारी ॥ २ ॥ लख्ते जिगर अहो प्यारे, अहो मुजने नोकेतारे प्रभु केसी वीपत्ता डारी ॥पीउ चा०॥ ३ ॥ कहे हरीचंद राणी ताई, ना उठे गडोदे उठाई; जब राणी करे पुकारी ॥ पी० ॥ ४ ॥ तु भंगी घर रहे । कहे राणी मे वीप्र घर भरु पाणी, लग-

ती है छोत ये भारी ॥ पी० ॥ ५ ॥ पीउ जेसा सत्य तुमारा, मुझेभी मेरा सत प्यारा जी; ईसकारण ये लाचारी ॥ पी ॥ ६ ॥ पीउ देखीने दुःख तुमारा, मुज लगता बोहत करारा जी; लेकिन सत्यभीन छुटे लगारी ॥ पी ॥ ७ ॥ राणी तरकीबबताई, लीयो हरचन्द घडो उठाइ; गया दोनोही नीज दुवारी ॥ पी ॥ ८ ॥ येसा वीरला आदम जानो, संकटमे सत्य नभानो; हुवा राजा हरचंद जाहारी ॥ पी ॥ ९ ॥ सत सीलसे लक्ष्मी पावे, मनवंछीत सम्पत आवे, सत धारो सवी नरनारी ॥ पी ॥ १० गुरू हीरालालजी ज्ञानी, चोथमलकुं सीखाई जीन वानी; मेरे गुरु बडे उपगारी ॥ पी ॥ ११ ॥ सेहर जावदकेमाही, मेने वीच सभाके गाई, जगणीसे सतसट साल गुजारी. ॥ पी ॥ १२ ॥

॥ अथ परदेशी राजाकी पंचरंगती लाव-

नी देशी (लंगडी) केशी कवर माहाराज, स-
मण भवसागरसे, तीरनेवाले मुनि भान ज्ञानके,
आप अज्ञान तिमरहरने वाले, मुनि भान ज्ञा-
नके आप ॥टेर॥ सावन्ती नगरीसे दयानिध,शीतं-
बका नगरी आया; उपगार जाणके, पांचशे
संतोकुं संगमें लाया. उपगार ॥ चित प्रधान,
सुणी मुनि आगम्र,अती चैन चितमैं पाया; प-
रदेशी भुपकुं, करी तजबीज वहां लेकर आया
॥ परदेशी ॥ शेर ॥ राजा और परधान दोनु,
अस्वलिया क्रर धारजी, इधर उधर टेलावता,
आया नजर अणगारजी, सुण बोलाये जड मु-
रख, कोनहै बेकारजी, बैनतो मींठा लगे है दी-
पता दीदारजी ॥ छोटी कडी ॥ तब चतुर चित
युं कहे सुनों महाराया, ये केशी कुवर निग्रंथ,
मैंमि सुण पाया; ये अलग अलग दो माने जीव
और काया, ये पुरंन ज्ञान भंडार तजी मोह मा-

या ॥ द्रोण ॥ ईतनी सुणके नृप चीत जीसे राहा पुछी माहाराज मुनीपे, दोई मोल आयाजी; हे अवद ज्ञान तुम पास, पुछे परदेशी रायाजी, जुदा न चोर बनीया उपठराहा पुछे ॥ माहाराज मुनी द्रष्टांत सुणायाजी, तेने संतोका अपराद कीया, नही शीश नमायाजी ॥ दोड ॥ सुणके संतोके बेण, नृप कीया नीचा नेण; मेरे असलमे सेण जब कठन कही,(जब)राजा बोले युं शीताब, खंम्यावंत सादु आप गुना कीजे सब माफ, मेरी भुल रही, मेरी० थोडी वखत के काज, यहा बेठु मैं आज, मृजो होयतो माहाराज, दोजे हुकम सही दीजे. जरा समज राजान, येतो तेराहीं आरान, हमतो साडुहै महान, करे मना नही, करे. ॥ मीलाप ॥ राजा मनमे जान गया, ये मुजे न्याल करने वाले; मुनी भान ज्ञानके, आप अज्ञान तीमर हरने

वाले ॥ १ ॥ बैठा न्रुप पुछे करजोडी, क्या मा-
नो तुम करो मया; तब न्नरी सभामे मुनीश्वर
जीवरु काया अलग कया;जब मेरा दादा था अती
पापी नहींथी उनके जरा दया; वो आउष कर-
के, तुमारीके नमु जबतो,नरक गया (वो आउष)
॥ शेर ॥ मैं पोतो अती प्राण प्यारो कहे मुजे
वो आयजी, तो जीव काया है अलेदी, मानतो
तुम वायजी; मधुर बेण मुनीवर कहे सुण ध्यान
धरके रायजी, तेरा दादा नरकसे, केसे सके वो
आयजी (छोटी कडी) तेरी सुरी कंथा नार
करके शीणगारा, अन्य पुरुषके साथ; बीलसे
सुख संसारा. तेने खुद आखोंसे देखलीया क्रम
सारा, सच बोल उसे क्या देवे डंड न्नोपाला. द्रोण
॥ततकाल खडग नीकाल उसै मैं मारु माहाराज
करे तुजसे नरमाईजी; मत मारो मुजे माहारा-
न्न, करु ऐसा कन्नी नाईजी; क्या कहो आप मे

हरगीज कभी ना छोडुं, माहाराज कहै फिर तरक उठाईजी, मै मीलु कुटबसे जाय, आउ पीछो खीन माहीजी; (दोड) राजा कहै यु वी· चार मेराहै वो गुनेगार; मैंतो छोडुना लगार, केसे घर जावे, केसे० ईसी जवमै साक्षात, उस· के कुटंवके साथ, डुख आरामकी बात, किम दरशावे, किम० तेरा दादाकहुं साफ करके अहा दश पाय; गया नरकमें आप, ईया कीम आवे ईया. जीव काया न्यारी मान, राजा तुंहै बुधी· ान; छुटी टेक मती तान; मुनि फुरमावे (मु· न) मीलाप. नही मानु माहाराज आप बुधीसे कथन करने वाले, मुनि ज्ञान ज्ञानके ॥ २ । मेरी दादीथी गुणवंती, दया धर्मसे हटी नही; करि वोहोत तपशा; तुमारी सरदासे, सुरलोक गई (करि वोहत तपशा,तुमारी उनकुं कौन रो· कने वाला; वो अपने आधीन रही, मैया अती

प्यारा; आज दीनतक ना मुजसे आन कही. मेघा शेर ॥ दादी आय मुज भाकती; सुरलोक-का बयानजी; तो जीव काया है अलेदी लेतो क्यों नां मानजी; नृप कहे ईस कारणे, मेराहै मत परमानजी; कीजे खुलासा बातका; बेठे सब ईनसानजी ॥ छोटी कडी ॥ ईतनी सुणके मुनीराज नजीर सुनावे, करी सनान नरपतु देव पुजवा जावे; एक भंगी देवलारचमे तुजे बुला-वे, सच बोल वहांतुं; जावे के नही जावे. ॥ ॥ द्रोण ॥ नरनाथ कहै जानातो दुर रहै लहो; माहाराज उधर देखुनी नाहीजी; वो माहा अ-शुची ठाम, और दुरगंध बस माहीजी, ईस म-नुष्य लोककी, दुरगंध ऊंची जावे, माहाराज पानसे जोजनताईजी, ईस कारण करके राय देवता सकेने आईजी, दोड ॥ अबतो समज तु राय, पक्ष छोडदे अन्याय; मान जीव और काय;

अपनी क्यो तानें अप सची कहुं मुनिराय, येतो बु-
द्धीसे बनाय; दीनी जुगतजमाय हम नही माने.
हम० एक चोर हात आया, लोहोकोटीमे धरा-
या; पुरा जापता कराया; ठाया पुरशाने ठा०
केही दीनोमे कडाया, वोतो मरा दरशाया; छेक
नजर न आया करी पहीचाने. करी. मीलाप ॥
केशे मानु जीव अलग, कहो शंशे दुर हरने
वाले; मुनी० आ. ॥ ३ ॥ लेकर ढोल जुंकोही
पुरष बेठे जाकर भोइरा माई; उपरसे शीला
ढाककर लेप करे अती चतुराई; उपर भीतर ढो-
लका शब्द करे वो, बाहीर नीकशे के नाही, सच
बोल नरपती, छीद्र कहो देवे कोशोकु दरशाई.
सच० शेर ॥ छीद्र नही केना पडे, पण शब्द
नीकले आयजी; प्रतीत कर ईस न्यायसे, परदे-
शी नामे रायजी, जीवभेद पखानकुं उचाईसीत
रद्द जायगी; दोनु चीजेंहे अलेदी मानले मुज-

वायजी, ॥ छोटी कडी ॥ तुम बुद्धीवान मुनी, दीनी जुगत जमाई; मेरे तो दीलमे हरगीज बेठे नाई, एक दीन चोरकुं मारा सास रुकाई, लो-होकी कोठीमे, दीना उसे धराई, ॥ ड्रोण ॥ फिर ढाकण ढांक, छिद्रकु बंद कराया, माहाराज र-ख्या कीतना दीन ताईजी; देखातो खोलके कीडे बोहत उसके तन माहीजी; बाहिरसे भीतर जीव जीधरसे आए, माहाराज छीद्र देता दरशाईजी, तो लेता मान माहाराज तर्क करताभी नाहीजी.॥ ॥ दोड ॥ गोला लोहाकाझाल दीया अगनमे डाल;धमता देख्याथे भोपाल,हांहां नुप कही हां धमे धमण दबाय, तामे अग्न भराय, उस गोलेके राय;छीद्र होय या नही. नृप कहै युं बीचार,उस गोलेके सुजार;छेक होयना लगार,येतो बात स-ही० बस यही मीशाल मान मान महीपाल; मी ख्या भरमकु टाल, मुनी बोहात कही; मुनी०

(मीलाप) नही मानु माहाराज आप बुधीसे कथन करने वाले, मुनी ज्ञान ॥ ४ ॥ सब जी· वोकी शक्त सरीकी हैया नही मुजे दीजे कही; तब मुनीवर बोल्या, सरी कीशागतहै ईसमे फरक नही ॥ तब ॥ तरुण पुरुष दील चाहे वहा खुद डाले तीरतो पडे जाइ, उतनीही दुरपे लघु बालकसे कहो किम जाय नही. उतनी. शेर ॥ तुष नवा जीवानवी, द्रढबंदउसके रायजी; तरु· पुरुष जब तीरवावे, जायके नही जा ाजी. जुप कहै हां क्योन जावे, मुनी दीया फीर ्यायजी, धनुष्यादिक कची हुवे तब जायके नही । जायजी, ॥ छोटी कडी ॥ ईतना तो दुर वो तीर जाय कबु नाही, बस यही न्याय तुं समज न· रप मनमाही, ये तुरण पुरुष सम जिव, धनुष तन माही जैसा हो वैसा प्राक्रम हे दरशाही. ॥ द्रोण ॥ क्यों करे तान लेमान, जीव

और काया, माहाराज नृप कहे शीश हीलाई जी, तुम बुद्धीवान महाराज, मानु मे हीरगज नाईजी, जीतना लोहाका भार तुरग ले जावे, महाराज धरी कावड के माईजी, उत्तनाही भार अती व्रद्ध क्यों ना लेजाय उठाईजी ॥ दोड ॥ जो मीलती हे महान जीव काया लेतो मान, एती करनेसे तान, मेरे गरज कई, कावड नवी होतो राय, लोहा धरके उस माय, तुरग पुरष उगाय, लेजाय या नही. नृप कहे हां लेजाय, फीर बोले मुनीराय, कावड जुनी होतो राय, अब बोल सही, नही नही कृपाल, कावड जी-रण दयाल, मुनी जीवपे मीसाल, उतार दही. (मीलाप) नही मानु माहाराज आप बुद्धीसे कथन करनेवाले, मुनी ज्ञान ॥ ५ ॥ पहेले तोल त्राजुमे चोरकु मारा खुन नीकलाभि नही, कीया प्रशन सातमा, फेर तोला तो वजनमें

आया वही,(कीया) कमती होता जरा बजनमे,
तो मे लेता मान सही, फिरतर्क उठाके, संतो
से जुगी तान करताभी नही, फीर. ॥ शेर ॥
हवा भरी चरम दीवडी देखी कभी थे रायजी,
हां हां देखी शामजी, कीरपा करी फरमायजी,
पेहले तोल, बंद खोलदे, नही रहे हवा उस
मायजी, फीर तोले तो वजनमे कमती हुवे
या नायजी, (छोटी कडी) वो वजन माय
कमती तो हुवे कछु नाइ; बस यही न्याय, तु
समज नरप मनमाही, जोरुपी हवा नही दव
भार दरशाई, तो जीव अरुपी ये क्या वजन
गीनाई. (द्रोण) क्यों करे तान लेमान जीव
और काया, महाराज जुप कहे, शीश दीलाई
जी, तुम बुद्धीवान महाराज मानु मै हीरगज
नाहीजी, एक मारा चोर ततकाल बोहत खंड
करके, महाराज जीव फीर देखा माहीजी, जो

आता नजर तो लेता मान, हट करता नाहीजी, (दोड) मुनी कहे यु बीचार, राजा तुंतो है गवार, जेसा था वो कठीयार, कोई फर्क नही, कठीयारा कीस न्याय, मुजे कया मुनीराय, आप दीजे फुरमाय, भृम मीटे सही, मीलके बहु कठीयार, गया बनके मुजार. उसमें था एक गवार ताकु अज्ञा दई. ईस अरणीसे ततकाल लीजे अगन नीकाल करजे रशोई तयार आ वांई धन लई (मीलाप) वो मुरख अरणीकुं कापी खंड खंडमें अगनी भाले,मुनीज्ञा॥६॥के॥ नही मीली अरणीमें अगनी सोच करे आसु डारे ई धन ले लेके, आय जंगल सेवो सब कठीयारेई पुछि बात मुरखसे तबतो बीतक हाल कया सारे, अरणीकुं गीसके बताई अग्नकाफ कर ततकालेअ॥शेर॥आहार कर फीर ईंधन लेकर गया वो नगरी मायजी, जेसा काम उसने किया

तैसा कीयाथे रायजी ठती अग्न अरणी वीखे नही आवे नजरे रायजी, जीवकाया है अलेदी मानले ईस न्यायजी (ठेटी कडी) वीघवान मुनी तुम माख बोहत चतुराई, नही मानु मेतो थे मलसे जुगत जमाई, नवमा परशन नृप करे शभाके माही, है केशा जीव तुम दो अपना द-रशाई (ढाण) मुनीराज कहै सुण नरपत ईस दरखतका, महाराज पत्र कहो कोन हीलावेजी, नही देवादिक माहाराज पवन ईसकुं कंपावेजी जो पवन चीज, सत्य बोल नरप तु देखे, महा-राज नजर येतो नहीं आवेजी, तो जीव अरुपी चीज कहो हम केसे बतावेंजी (दोड) अरे अवतो छोड तान; राजा तु है वीघवान, जीव काया दोनु मान, वहोत देर नही, प्रशन करे फेर राय, हाथी कुंथवाके माय, जीव सम है, या नाय मुजे दिजे कही, नीशै समजतु राय

हाथी कुंथवाके माय जीव सरीका गीणाय कोही फरक नही मोटी चीज मुनीराय केम छोटीमे समाय; कहो नजीर लगाय, मीटे ज्ञरम शही (मीलाप) दीनजीर दीपकज्ञांजनकी न्यायपंथ चलने वाले;मुनी ज्ञान॥७॥केशी॥अबतो मान जीव और काया क्यों इतनीतु कहलावे, तब बोले नरपती; पुरानी शरधा नही छोरी जावे तब लोहो बनीयाकी तरह या दरख अरे नरपतु पछतावे; मुनी शाफ शुनाई, छोड मीथ्या शरदा कीम शरमावे, मुनी० शेर ॥ लोहो बनीया केसे हुवा तुम कहो मुजे समजायजी, तब मुनी कहै तुम साम्भलो, एक ध्यान घरके रायजी,घन अर्थी बहु वाणीया जाताथा जंगलमायजी, एक खान देखी लोहाकी लीनाहै सबने उठायजी (गंटी करी) आगे जाता तांबाकी खान जब आई लेलीया तुरत सब लोहो दीया छटकाई, था एक

अनाम्री उसने माना नाही, करी दया इष्ट सब लोग रया समजाई (ढोए) रुपेकी खान सोनेकी फीर रतनोकी, माहाराज बजर हीरोकी आईजी, लेलीया अदीकसे अदीक तजा सस्तेकुं वाहीजी, सब लोक कहे लेले तुम्हीं क्या देखे महाराज, मुढ हट गेडे नाहीजी, मे बहोत डुरका लीया, भार कीम दुं ठटकाईजी ॥ दोम्ह ॥ लेलेके धनमाल, अती होयके खुशाल, घर आया सब चाल, अती सुख पावे, उस मुरखकी बात, अब सुणो नरनाथ, लीया लोहेकु साथ, वेचन जावे, सीधा बाजारमे आया बेचा लोहाजो लाया; मोल थोड़ासा आया, मन पछतावे, दीनी मैनेजो सीखाल, एसाहै तु महीपाल, लीजे अवही सम्हाल मुनी फुरमावे (मीलाप) साफ साफ मुनीराज कही, राजासे नही डरने वाले, मुनी ज्ञान ज्ञान॥८॥ नही वनुं लोह वनीया जैसा कहै

नरपयु करजोमी, मन वच कायासे, मेतो मी ध्या सरदा गेडी गेडी, मान लीया जीवादीक मेने, बोत करी लंबी चोमी, दीलमे मतलाना, क्योक माहाराज, हमारी बुध थोडी, दिल ॥ शेर ॥ अब मुजकुं धर्मदेशना; फरमावो कीरपा नाथजी, वैराग रंग ऐसा चडे उतरे नही दीन-रातजी; मधुर कथा मुनीवर कही, तब जोडी दोनु हातजी सरध्या बचनमे आपका, धुबी नवे नरनाथजी (गेटी कमी) वो धन पुरषजो सं-जमका व्रत धारे एसातो नाव नही है महाराज हमारे, मुजे श्रावगका व्रत दीजे, कीजे नवपारे बीन एसा गुरुके कोन करे नीस्तारे (द्रोण) तब मुनीराज, भुपतकु व्रत धराया, महाराज ब-होत उपकार कमायाजी, गया नीज स्थानक महीपाल, खुशीका पार ने पायाजी, फीर बीजे दिन, बहु वीदसजके असवारी, माहाराज मही-

पत बंद न आयाजी, करजोम नमाके शीश, सबही अपराघ खमायाजा (डोरू) राजा सुण- ले एक सीक, मत होजे (अ रमणीक) अरे पा- रजे तुरीक, व्रत नेम लीया व्रत ॥ मेरे जीतनाहै राज इस राजके महाराज; तुलचार हीस्से आज मेने कीया कीया तोज चोथे हीस्सेका आदान डुखी डुर्बल गीळ्यान, ताकु डुगा मेदान; कहुं प्र- गट ईहा, लीया सुजस अपार; करके बहु उप- गार; लेके संतोको लार; मुनी व्यार कीया (मी- लाप) नरनारी गुन बोल रहै, नगरीमे सुख करनेवाले मुनी ज्ञान ज्ञानके)॥ १ ॥ महीपत पण नीज ज्ञवन गया; स्रावगका व्रत सुद्द पाले है; वेराग रंगमै सदा अतीचार दोषकु टाले है. ॥ करके तपसा, पुरव संचीत पाप कर्मकु गाले है. खुद उसी दीनसे, राजका काजज्ञी नही सं- ज्ञाले है: पुद ॥ शेर ॥ प्राणवल वरायनी तव

सुरीकंथा नारजी, कोई दीन मन चीतवे, ञर-
म्यो है मुज ञरतारजी; नीज पुतर बुलवायके,
युं बोले शंक नीवारजी, तुज पीताकुं, अगन या
वीष शस्त्रदे मारजी (ढेटी कडी) तो राजपाट
सब देउगा तुज ताइ, इतनी सुणके हांनांञी
कयो कछु नाही, फीर वोही बात दो तीन दफे,
फरमाई, बिनडत्र दीया गयो ततखीन कुवर च-
लाईः द्रोण ॥ तब पाढल बुधी नार बीचारे मन-
मे, माहाराज कीजे अब कोन उपायाजी, बीष
मीश्रत अहार बनाय, पतीकु नोय जीमायाजी;
एक लेतां ग्रास नृप जाण गयो छुधीसे; महारा-
ज रानीये रोस न लायाजी; उठ चाल्या आप,
शीताब्र धर्म स्थानकमे आयाजी ॥ दोह ॥
बीदी सहीत चटपट, कीया अणसण जटपट
नहीं काहुसे लटपट, नृप अमोल रयानृः वहु
पापकु परवार, सुद भावोमे ञोपाल, करके

काल समे काल, पेले सुर्ग गयो, माहा वीद
हषेत्र माही, क्रम अष्टकुं खपाई; जासी मु
गतके माही, जीन राज कया: समत १७ से छ:
तीस उपर अदक बतीस, पुरे दीन एकवीस; सा
लको टरया. ॥ मीलाप ॥ मेरे गुरु नंदलाल
मुनी, जीनवरसे ध्यान धरने वाले; मुनी ज्ञान
ज्ञानके ॥ १० ॥

॥ समाप्त ॥

नवीन खुश खबर.

इस जैन प्रतिबोध चींतामणिका दुसरा भाग छपनेका उद्योग हो रहाहै तयार होनेपर भेजा जावेगा और कलीयुगका आठ भाग जो शहैर जावदका अग्रवाल नाथुलालजीका बनाया हुवा बडे मशहुर और अच्छे देखने लायकहै वो भी छप रहाहै जीस कीसीको चाहीये वो हमसे पत्र वेवार करे और हमारे यहा बहोत कीसमकी पुस्तकें जैसे जैन धर्म व वीशनु धर्म व कीसा कहानी नीती वगेराकी हरवक्त मोजुद रहतीहै [व कीनारी गोटा रुपेरी सुनेरी पतला पगाणी लपी गोकरु ठपा पाचदामन पटा पेमक वाकडी फुल बधनकीया ये सब तराहाका माल पका वा कचा हमारी दुकानपर बडे कीफायतके साथ फरोक्त होता है. कीसी भाईको चाहीये तो पत्र शहैर जावदको रवाना करे.

पता हमारा—चोधरी जोरावरमलजी घासीलाल
कुफलेलर व गोटा फरोश मु० शहैर जावद.
ठी: चौधरीयोकी हवेली. राज—ग्वालीयर.

चित्र परिचय ।

यह सौम्य । कांति युक्त चित्र किस महानुभाव का है ? इस की मनके हरण करने हारी अलौकिक छवि किस भव्य आत्मा की है ?

इस चित्रकी मुखाकृति पर अति सौंदर्य के धारण करने वाली हसन रूप क्रिया किस प्रकार मनको लुभा रही है ! प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! यह चित्र श्रीमान् श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन लाला मिड्डी मल लुधियाना निवासी के सुयोग्य पुत्र श्रीमान् लाला बाबूलाल जैनकी है आपका जन्म विक्रम संवत् १९४२ मृगशीर्ष शुक्ला ६ का श्रीमती देवी सरधी जी की कुक्षि से हुआ था आपकी बाल्यावस्था अत्यन्त सुखपूर्वक व्यतीत हुई फिर आपने अपनी योग्यता पूर्वक विद्याध्ययन किया आप बहुत ही शीघ्र अपने व्यापार कर्म में प्रवीण होगये योग्यता पूर्वक व्यापार करने लगे साथ ही जैन मुनियों की संगति के कारण से आप धर्म कार्यों में बहुत भाग लेने लगे इतना ही नहीं किन्तु दानियों की मालाओं में आप का नाम अंकित हो गया आप अनाथों की वा विधवाओं की अन्तःकरण से सहायता करते थे धार्मिक कार्यों में आप ने बहुत ही द्रव्य व्यय किया था तथा जो आज दिन लुधियाना शहर में जैन कन्या पाठशाला बड़े अच्छे रूप में चल रही है इसकी स्थापना में मुख्य कारण आप ही थे आपने इस पाठशाला की रक्षार्थ बहुत सा

द्रव्य व्यय किया था जो जैन गृहस्थ आप से किसी प्रकार की प्रार्थना करता था आप उसको निराश नहीं करते थे इसी दान के माहात्म्य से आप का शुभ नाम दूर देशान्तर में विस्तृत हो गया था, आप विद्या प्रेमी भी अतीव थे जो कोई विद्या के लिये आप से चंदा मांगता था वह अपनी इच्छानुकूल द्रव्य पा लेता था श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी ऑल इंडिया जैन कान्फरन्स और पंजाब जैन कान्फरन्स में आप बहुत सा भाग लेते थे दोनों कान्फरन्सों की उन्नति के लिये आप ने बहुत सा द्रव्य व्यय किया यत्र तत्र धार्मिक संस्थाओं का नाम आप सुनते थे आप उसकी रक्षा के लिये यथा शक्ति द्रव्य की सहायता उस संस्था को पहुँचाते थे किं बहुना जैन धर्म से आपको असीम प्रेम था जैन साधुओं की भक्ति आप के हृदय में बड़ी सुदृढ़ता के साथ अंकित होरही थी। आप उनकी यथोचित सेवा भक्ति करके लाभ उठाते थे। विद्यार्थी साधुओं के लिये भी आप की ओर से सुचारु प्रबन्ध शीघ्र ही होजाता था। हा शोक! काल की कैसी विचित्र घटना है एक परमोत्साही जैन युवक को समय भली प्रकार से न देख सका यही कारण था कि इस नश्वर संसार से आप संवत् १९७९ आषाढ़ कृष्णा ११ अपने वृद्ध पिता लाला मिट्ठीमल को और अपनी भावी होनहार सन्तान तथा अपने सर्व परिवार को वियोग रूपी सागर में छोड़ कर स्वर्गवासी बन गये परन्तु काल करते समय भी आपने अपनी सदैव यशोगान करने वाली दान शैली

को विस्मृत नहीं होने दिया था अन्य दान करते समय आपने धर्म कार्य में व्यय करने के लिये भी ५००) रुपये दान कर दिये सत्य है सत्पुरुष नाना प्रकार की विपत्तियों के आने पर भी अपनी प्रकृति से यत् किंचन्मात्र भी विचलित नहीं होने पाते हम आप के फले फूले परिवार से सहानुभूति करते हैं और श्री जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करते हैं कि आपकी आत्मा को शान्ति मिले। इसमें कोई भी आश्चर्य नहीं कि पुण्यात्माओं की प्रायः संतति भी पुण्य रूप ही होती है। आप का अनुकरण करने वाले आप के सुपुत्र लाला गुजरमल लाला सोहनलाल व लाला व्रजलाल भी धर्म कार्यों में वहुत सा भाग लेते रहते हैं आप की वृद्धा भगिनी श्रीमती धन देवी (धन्नो) और आप की धर्म पत्नी श्रीमती द्वारिका देवी धर्म कार्यों में उत्साह पूर्वक काम कर रही हैं आप इस विनश्वर संसार में अपनी तीन कन्यायें और तीनों ही सुपुत्रों को छोड़ गये हैं हम श्री जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करते हैं कि जिस प्रकार धर्म कार्यों में आप का अन्तःकरण लगा रहता था और जैन जाति के उन्नत करने के लिये आप अनेक प्रकार के मार्गों का अन्वेषण किया करते थे उसी प्रकार आपका पवित्र अनुकरण आप का सकल परिवार भी किये जारहा है इसी प्रकार आगामी काल में भी करता रहे यही हमारी अंतरंग भावना है यह "जैन शिक्षावली" नामक ग्रन्थ के पाचों ही भाग आपके सुपुत्रों ने आप का नाम चिरस्थायी करने के लिये और आप की स्मृति के

लिये आप के दान किये हुये द्रव्य से मुद्रित किये हैं क्योंकि यह ग्रन्थ कई वार मुद्रित हो भी चुका है परन्तु पाठशालाओं में इस ग्रन्थ को प्रायः प्रत्येक श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन ने इस ग्रन्थ को स्थान दिया है अतः इसकी अतीव मांग आने पर आप के पूज्य पिताजी और सुपुत्रों ने आपकी स्मृति के लिये मुद्रित करवा के श्री संघ पर परम उपकार किया है जिससे वे धन्यवाद के पात्र हैं। अतएव हम उन सब को सहर्ष धन्यवाद देते हुये श्री संघ से आवश्यकीय प्रार्थना किये विना नहीं रह सकते कि धर्म कार्यों में आप लोग भी श्रीमान् लाला वावूलाल जैन का अनुकरण करके जैन धर्म को उन्नति के शिखर पर पहुँचाते हुये अक्षय सुख की प्राप्ति करें और साथ ही श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के प्रतिपादन किये हुये श्री अहिंसा धर्म के प्रचार से जनता में शान्ति स्थापन करें।

निवेदक

जैन कन्या पाठशाला के सभासद्

जैन धर्म शिक्षावली

* दूसरा भाग *

लेखक

उपाध्याय जैनमुनि श्री आत्मारामजी महाराज।

—0—

प्रकाशक

ला० मिट्ठीमल बाबूराम जी जैन
चौड़ा बाज़ार, लुधियाना।

एङ्गलो ओरीयण्टल प्रैस चैम्बरलेन रोड लाहौर में
लालजीदास के अधिकार से छपा।

तृतीयावृत्ति १०००] [1925.

* श्रीमहावीरायनमः *

जयजिनेन्द्र देव ! जयजिनेन्द्र दे

जैन धर्मशिक्षावली ।

❀ दूसरा भाग ❀

पहिला पाठ ।

सर्वमङ्गल मांगल्यं सर्वकल्याणकारणम् ।
प्रधानं सर्व धर्माणां जैनं जयति शासनम् ॥

प्रश्न—सच्चा धर्म कौनसा है ?

उत्तर—श्री जैन धर्म ?

प्र०—धर्म से क्या मिलता है ?

उ०—धर्म से सुख मिलता है, दुःख दूर होता है ।

प्र०—धर्म के लक्षण (भेद) कितने हैं ?

उ०—दश १० ।

प्र०—धर्म के लक्षणों के नाम बताओ ?

उ०—१ क्षमा २ निर्लोभ ३ आर्जवभाव ४ मार्दवभा

५ लघुभाव ६ सत्य ७ संयम ८ तप ९ त्याग (दान) १० ब्रह्मचर्य्य ।

प्र०—'क्षमा' शब्द का क्या अर्थ है ?

उ०—नरमाई और शान्ति ।

प्र०—निर्लोभता क्या है ?

उ०—लालच न करना ।

प्र०—आर्जवभाव किसे कहते हैं ?

उ०—छल न करना (निष्कपट)

प्र०—मार्दव शब्द का अर्थ क्या है ?

उ०—सकोमल स्वभाव, अहङ्कार न करना ।

प्र०—लाघव धर्म किसे कहते हैं ?

उ०—ममत्व भाव से रहित होना (हलके रहना) ।

प्र०—सत्य का अर्थ क्या है ?

उ०—यथार्थ कहना, झूठ न बोलना ।

प्र०—संयम का अर्थ क्या है ?

उ०—विवेक (यत्न) करना ।

प्र०—तप किसे कहते हैं ?

उ०—इच्छा का निरोध करना (रोकना) ।

प्र०—त्याग किसे कहते हैं ?

उ०—दान करना, अभयदानादि का देना ।

प्र०—ब्रह्मचर्य्य का अर्थ क्या है ?

उ०—कुशल अनुष्ठान का सेवन करना और शास्त्र पढ़ना, मैथुन से निवृत्ति करना ।

प्र०—इनका क्या फल है ?

उ०—संसार में मान और मोक्ष का सुख ।

प्र०—मोक्ष किसे कहते हैं ?

उ०—जहां पर कोई भी दुःख न हो ।

प्र०—मोक्ष आत्मायें सर्वज्ञ हैं या अल्पज्ञ ?

उ०—मोक्ष आत्मायें सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं ।

प्र०—बताओ पुष्प कितने प्रकार के होते हैं ?

उ०—चार प्रकार के ।

प्र०—वे कौन २ से हैं ?

उ०—१ एक पुष्प सुंदर तो होते हैं किन्तु सुगंध से रहित होते हैं, २ एक सुगन्ध से भरे होते हैं अपितु रूप से वर्जित होते हैं, ३ एक सुगंध और सुंदरता से पूर्ण होते हैं, ४ एक सुगंध और सुंदरता दोनों से ही रहित होते हैं ।

प्र०—इन पुष्पों से क्या शिक्षा मिलती है ?

उ०—जैसे चार प्रकार के पुष्प हैं उसी तरह चार प्रकार के पुरुष होते हैं जैसे कि—एक रूपवान् और शील से

रहित १ दूसरे शीलवान् और रूप रहित २ तीसरे शील और रूप दोनों से युक्त ३ चौथे शील और रूप दोनों से रहित ४ ।

प्र०—बतलाओ इन में श्रेष्ठ कौन २ से हैं ?

उ०—जो शील (सदाचार) से युक्त हैं वही श्रेष्ठ हैं दूसरे और तीसरे अङ्क वाले पुरुष श्रेष्ठ होते हैं ॥

प्रश्नावली ।

१. धर्म के दश भेद बतलाओ ?

२. मार्दव शब्द का अर्थ क्या है ?

३. त्याग का अर्थ क्या है ?

४. मोक्ष आत्मायें सर्वज्ञ हैं या अल्पज्ञ ?

५. पुरुष कितने प्रकार के होते हैं ?

६. पुरुष श्रेष्ठ कौन २ से हैं ?

दूसरा पाठ ।

प्र०—गति किसे कहते हैं ?

उ०—जिस में जीव जाते हैं ।

प्र०—गति कितनी हैं ?

उ०—चार ।

प्र०—वे कौन २ सी हैं ?

उ०—नरक गति १ तिर्यक् गति २ मनुष्य गति ३ और देव गति ४ ।

प्र०—नरक गति किसे कहते हैं ?

उ०—जो जीव पाप कर्म करते हैं, वे मरकर नरक में जाते हैं, उसे ही नरक गति कहते हैं ।

प्र०—तिर्यक् गति किसे कहते हैं ?

उ०—जो जीव झूठ बोलते हैं छल करते हैं और व्यापारादि में धोका करते हैं वे मरकर प्रायः पशु योनि में जाते हैं उसे ही तिर्यक् गति कहते हैं ।

प्र०—मनुष्य गति किसे कहते हैं ?

उ०—जो जीव स्वभाव से भद्र और विनयवान् दयालु तथा किसी दूसरे की ईर्ष्या न करने वाले हैं वे प्रायः मरकर मनुष्य गति में जाते हैं उसे ही मनुष्य गति कहते हैं ।

प्र०—देवगति किसे कहते हैं ?

उ०—जो जीव अत्यन्त शुभ कर्म करने वाले हैं वे मरकर देवता बन जाते हैं उसे ही देव गति कहते हैं ।

प्र०—जाति किसे कहते हैं ?

उ०—जिस में जीव का जन्म होवे और उस जन्म तक उसी जाति में रहे ।

प्र०—जाति कितनी हैं ?

उ०—पांच।

प्र०—वे कौन २ सी हैं ?

उ०—एकेन्द्रिय जाति १ द्वीन्द्रिय जाति २ त्रीन्द्रिय जाति ३ चतुरिन्द्रिय जाति ४ पंचेन्द्रिय जाति ५।

प्र०—एकेन्द्रिय जाति किसे कहते हैं ?

उ०—जिस जीव के एक ही स्पर्श इन्द्रिय हो जैसे—मिट्टी १ पानी २, अग्नि ३, वायु ४, वनस्पति ५।

प्र०—दो इन्द्रिय वाले जीव कौन २ से हैं ?

उ०—जिस जीव के दो ही इन्द्रिय होवें स्पर्श और जिह्वा। जैसे कि सीप, संख, गंडोया, जोक इत्यादि।

प्र०—तीनों इन्द्रिय वाले जीव कौन २ से हैं ?

उ०—जिन जीवों को तीन इन्द्रियें हैं जैसे कि स्पर्श, जिह्वा और नासिका, वे जीव यह हैं जैसे कि—जूं, लीख, ढोरा, सुसरी, कीड़ी, कुंथुवा इत्यादि।

प्र०—चतुरिन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

उ०—जिन जीवों के चारों ही इन्द्रियें हैं जैसे कि स्पर्श, जिह्वा, नासिका और आंखें, वे जीव यह हैं—मक्खी, मच्छर, भमरा, बिच्छू, पतंगिया इत्यादि।

प्र०—पंचेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उ०—जिन जीवों के पांचों इन्द्रियें हों जैसे-कि स्पर्श, जिह्वा, नासिका, आंखें (चक्षु) और श्रवण, (श्रोत्र-कान) वे जीव यह हैं जैसे कि मनुष्य, पशु, पक्षि, सांप, नारकीय, देव आदि ।

प्र०—काय किसे कहते हैं ?

उ०—जो समूह हो ।

प्र०—काय कितनी हैं ?

उ०—छै (६) ।

प्र०—काय कौनसी हैं ?

उ०—पृथिवीकाय, अप्काय, तेजोकाय, वायुकाय, वनस्पति काय और त्रसकाय ।

प्र०—इनका अर्थ बतलाओ ?

उ०—पृथिवीकाय (मिट्टी के जीव) अप्काय (पानी के जीव) तेजोकाय (अग्नि के जीव) वायुकाय (पवन-हवा के जीव) वनस्पतिकाय (सबजी के जीव) और त्रसकाय (हिलते चलते दो इन्द्रिय आदि के जीव) ।

प्र०—इन्द्रिय कितनी हैं ?

उ०—पांच ।

प्र०—वे कौन २ सी हैं ?

उ०—कान, आंखें, नासिका, जिह्वा, त्वचा ।

प्र०—पर्याप्त किसे कहते हैं ?

उ०—जो वस्तु सम्पूर्ण होजावे।

प्र०—पर्याप्त कितने हैं ?

उ०—छै (६)।

प्र०—वे कौन २ से हैं ?

उ०—आहार पर्याप्त (पूरा आहार) शरीर पर्याप्त (सम्पूर्ण शरीर) इन्द्रिय पर्याप्त (सम्पूर्ण इन्द्रिय) श्वासोश्वास पर्याप्त (सम्पूर्ण श्वासोश्वास) भाषा पर्याप्त (सम्पूर्ण भाषा) मनो पर्याप्त (सम्पूर्ण मन) यही छै पर्याप्त गर्भ में ही जीव पूर्ण कर लेता है।

प्रश्नावली।

१. चारों गतियों के नाम बताओ ?
२. छै काया के नाम कहो ?
३. जाति किसे कहते हैं ?
४. पांचों इन्द्रियों के नाम बतलाओ ?
५. मक्खी में कौन २ सी इन्द्रिय हैं उनके नाम लो ?
६. दो इन्द्रिय वाले जीव कौन २ से हैं ?
७. पशु गति में प्रायः कौन जीव जाते हैं ?
८. मनुष्य गति में कौन से जीव जाते हैं ?
९. जू कितनी इन्द्रियों वाला जीव है ?
१०. जोंक में कितनी इन्द्रिय हैं ?
११. अप्काय का क्या अर्थ है ?

तीसरा पाठ ।

प्र०—प्राण किसे कहते हैं ?

उ०—जिसके सहारे से यह जीव जीता है और वियोग होने से मृत्यु को प्राप्त होता है ।

प्र०—प्राण कितने हैं ?

उ०—दश ।

प्र०—उनके नाम बतलाओ ?

उ०—श्रुतेन्द्रिय बल प्राण १ चक्षुरिन्द्रिय बल प्राण २ घ्राणेन्द्रिय बल प्राण ३ रसेन्द्रिय बल प्राण ४ स्पर्शेन्द्रिय बल प्राण ५ मनः बल प्राण ६ वचन बल प्राण ७ काय बल प्राण ८ श्वासोश्वास बल प्राण ९ आयुष्कर्मबल प्राण १० ।

प्र०—इन प्राणों से क्या फल मिलता है ?

उ०—आयुष्कर्म बलप्राण होने से फिर मनादि सब प्राण कार्यसाधक होजाते हैं, यदि आयु बल प्राण न रहे तब सब प्राण निष्फल होजाते हैं ।

प्र०—शरीर किसे कहते हैं ?

उ०—जो समय २ विदीर्ण होता है क्षीण होता जाता है।
उसे शरीर कहते हैं।

प्र०—शरीर कितने प्रकार के हैं ?

उ०—पांच प्रकार के।

प्र०—उनके नाम बताओ ?

उ०—औदारिक शरीर १ वैक्रिय शरीर २ आहारिक शरी
३ तैजस शरीर ४ और कार्मण शरीर ५।

प्र०—औदारिक शरीर का अर्थ क्या है और यह शरी
किस २ के होता है ?

उ०—जो प्रधान शरीर हो और यह शरीर मनुष्य
तिर्यंचों के होता है त्रस जीवों का औदारिक श
हाड़, मांस, लोही, राध इत्यादि का बना हुआ
पांच स्थावरों का भी मूल शरीर औदारिक ही है।

प्र०—वैक्रिय शरीर किसे कहते हैं ?

उ०—जो अपनी शक्ति द्वारा नाना प्रकार की विक्रिया कर
रूप बनावे चमत्कार दिखलावे यह शरीर नार
और देवता के तो होता ही है किन्तु मनुष्य पशुअ
को भी होजाता है इसकी उत्पत्ति तप और शु
कर्मों से होती है।

प्र० आहारिक शरीर किसे कहते हैं ?

उ०—चौदह पूर्वधारी मुनि को ही यह शरीर होता है शंका आदि के होने पर केवली भगवान् के पास जाकर यह शरीर शंकाओं का निराकरण कर देता है।

प्र०—तैजस शरीर किसे कहते हैं?

उ०—जो आहार किए हुए को पकाता है (हाजमा) जठराग्नि।

प्र०—कार्मण शरीर किसे कहते हैं?

उ०—आठ कर्मों के समूह को जहां पर आठ ही कर्मों के परमाणु रहते हैं उस समूह को कार्मण शरीर कहते हैं।

प्र०—योग किसे कहते हैं?

उ०—नाम कर्म के योग से मनोवर्गणा वचनवर्गणा काय-वर्गणा इत्यादि से कर्म ग्रहण करने वा क्षय करने उसे भावयोग कहते हैं इस ही भावयोग के निमित्त से आत्म प्रदेश के परिस्फन्द को (चञ्चल होने को) द्रव्ययोग कहते हैं।

प्र०—योग कितने हैं?

उ०—पंचदश (पन्द्रह)।

प्र०—उनके नाम बतलाओ?

उ०—सत्य मनोयोग १ असत्यमनोयोग २ मिश्र मनोयोग ३ व्यवहार मनोयोग ४ सत्य भाषा ५ असत्य भाषा ६ मिश्र भाषा ७ व्यवहार भाषा ८ औदारिक

औदारिक मिश्र १० वैक्रियक ११ वैक्रिय मिश्र १२ आहारिक १३ आहारिक मिश्र १४ कार्मण १५।

प्र०—उपयोग किसे कहते हैं ?

उ०—ज्ञानादि में आत्मा का उपयुक्त होना।

प्र०—उपयोग कितने हैं ?

उ०—बारह १२।

प्र०—उनके नाम बताओ ?

उ०—पांच ज्ञान, तीनों अज्ञान, चार दर्शन हैं—जैसे कि मतिज्ञान १, श्रुतज्ञान २, अवधिज्ञान ३, मनपर्यव ज्ञान ४, केवल ज्ञान ५, मति अज्ञान ६, श्रुत अज्ञान ७, विभंग ज्ञान ८, चक्षुर्दर्शन ९, अचक्षुर्दर्शन १०, अवधि दर्शन ११, केवल ज्ञान १२।

प्र०—कर्म किसे कहते हैं ?

उ०—जो किए जाएं तथा आत्मा के साथ सूक्ष्म परमाणुओं का सम्बन्ध हो जाना।

प्र०—कर्म कितने प्रकार के हैं ?

उ०—आठ प्रकार के हैं।

प्र०—वे कौन २ से हैं ?

उ०—ज्ञानावरणीय कर्म १ दर्शनावरणीय कर्म २ वेदनीय कर्म

३ मोहनीय कर्म ४ आयुष्कर्म ५ नाम कर्म ६ गोत्र कर्म ७ और अंतराय ८ ।

प्र०—ज्ञानावरणीय किसे कहते हैं ?

उ०—जो ज्ञान को आवरण करता (ढांपता) है।

प्र०—दर्शनावरणीय किसे कहते हैं।

उ०—जो देखने की शक्ति को ढांपता है।

प्र०—वेदनीय कर्म किसे कहते हैं ?

उ०—जिस कर्म के फल से सुख वा दुःख भोगा जाता है।

प्र०—मोहनीय कर्म किसे कहते हैं ?

उ०—जिस के कारण से धर्म से विमुख होकर पाप कर्म में ही निरन्तर लगा रहे अर्थात् क्रोध, मान, माया और लोभादि में ही समय व्यतीत करे।

प्र०—नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उ०—जिस कर्म के प्रभाव से शरीर आदि के अवयव ठीक बनते हैं तथा शुभ नाम और अशुभ नाम के द्वारा अपने नाम को उत्पन्न करता है।

प्र०—आयुष्कर्म किसे कहते हैं ?

उ०—जिस कर्म से जीव अपनी आयु को बांधता है तथा नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवता की आयु जिस

कर्म से उत्पन्न की जाती है ।

प्र०—गोत्र कर्म किसे कहते हैं ?

उ०—जिस कर्म से जीव ऊंच और नीच जन्मों को धारण करता है ।

प्र०—अंतराय कर्म किसे कहते हैं ?

उ०—जिस कर्म के फल से कार्यों में अनेक विघ्न उपस्थित होजाते हैं ।

प्र०—वस्तु का पास न रहना और जिसके मिलने की आशा है उसका न मिलना यह किस कर्म का फल है ।

उ०—अंतराय कर्म का ।

प्र०—अंतराय कर्म का दूसरा नाम कौनसा है ?

उ०—विघ्नकर्म अर्थात् विघ्न ।

प्रश्नावली ।

१. प्राणों के नाम बतलाओ ?

२. शरीर कितने हैं ?

३. उपयोग कितने हैं ?

४. योग कितने हैं ?

५. औदारिक शरीर का क्या अर्थ है ?

६. कार्माण शरीर किसे कहते हैं ?

७ आहारिक शरीर किसको होता है ?

८. मोहनीय कर्म का अर्थ क्या है ?

९. कर्मों के नाम वतलाओ ?

१०. वेदनीय कर्म से क्या फल मिलता है ?

११. कर्म शब्द का अर्थ क्या है ?

१२. मन के योग कितने हैं ?

१३. तेजस शरीर किस काम में आता है ?

चौथा पाठ ।

प्र०—सती किसे कहते हैं ?

उ०—जो अपने पातिव्रत्यादि ग्रहण किए हुए धर्मों को न छोड़े ।

प्र०—इस प्रकार के धर्मों के ग्रहण करने वाली मुख्य सतिएं कितनी हुई हैं ?

उ०—सोलह १६ ।

प्र०—उनके नाम वताओ ?

उ०—ब्राह्मी १ सुंदरी २ चन्दनवाला ३ राजीमती ४ द्रौपदी ५ कौशल्या ६ कुंती ७ मृगावती ८ सुभद्रा ९ शिवादेवी १० प्रभावती ११ पद्मावती १२ दवदन्ती १३ सुलसा १४ सीता १५ कमलावती १६ ।

प्र०—इन से हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिए ?

उ०—इन्होंने अनेक कष्टों को सहन करके अपने सतीत्व धर्म की रक्षा की और आप आदर्श बनकर दिखलाया इसलिए प्रत्येक (हरएक) स्त्री को अपने जीवन को इनके समान पवित्र बनाना चाहिए, यही शिक्षा इनके जीवन से मिलती है।

प्र०—जिनेन्द्र भगवान् कौन थे ?

उ०—जैनधर्म के बताने वाले।

प्र०—वे भगवान् 'जिन' कब बने ?

उ०—जब उन्होंने राग द्वेष को नष्ट कर दिया।

प्र०—श्रावक को श्रमणोपासक क्यों कहते हैं ?

उ०—मुनियों की यथोचित सेवा करने से।

प्र०—श्रमण किसे कहते हैं ?

उ०—कष्टों के सहन करने से मुनि का नाम 'श्रमण' भी है।

प्र०—जिन वाणी क्या है ?

उ०—जैन सूत्र-सिद्धान्त वा शास्त्र।

प्र०—जैन सूत्र किस भाषा में है ?

उ०—प्राकृत (मागधी) भाषा में।

प्र०—तुम्हारे बड़ों का धर्म क्या था ?

प्र०—जैन धर्म क्यों अच्छा है ?

उ०—जैन धर्म अच्छा है, क्योंकि जैन धर्म बताता है, कि रात्रि भोजन न करो, बिना छाने पानी मत पीओ, अन्याय से वर्ताव मत करो, सब की रक्षा करो, अपने दोषों को देखते रहो, समय विभाग करके काम किया हुआ सुंदर होता है, कोई भी बुरा काम न करो।

प्र०—स्थानक का दूसरा नाम क्या है ?

उ०—उपाश्रय।

प्र०—आज तुमने उपाश्रय में क्या देखा ?

उ०—एक केश लूंचन किये हुए जैनी साधु जो चौकी पर बैठे हुए थे, जिनके मुख पर मुखपत्ती बंधी हुई थी, और रजोहरण पास रक्खा हुआ था, हाथ में लिखित के पत्र एक काठकी छोटीसी तखती पर रख कर वे व्याख्यान सुना रहे थे।

प्र०—उन्होंने तुम को व्याख्यान में क्या सुनाया ?

उ०—उन्होंने अपने व्याख्यान में धर्म के चार मार्ग बतलाए थे जैसे कि दान १ शील २ तप ३ और भाव ४ फिर उन्होंने यह भी कहा था कि पापों से बचना चाहिए और धर्म में मन को लगाना, चाहिए सत्य

का पालन करो, ईश्वर (जिन भगवान्) का जाप करो कोई भी बुरा कर्म न करो।

प्र०—जैन मत शुद्धि कितने प्रकार से मानता है ?

उ०—दो प्रकार से।

प्र०—वे दो प्रकार कौन २ से हैं ?

उ०—द्रव्य और भाव।

प्र०—इसका पूरा २ हाल बताओ ?

उ०—जैन शास्त्र पांच प्रकार से शुद्धि मानता है, जैसे कि पृथिवी से (मिट्टी से) पानी से, अग्नि से, मंत्र से, ब्रह्मचर्य से, सो द्रव्य शुद्धि जलादि से होती है भाव शुद्धि आत्मा को पापों से बचाना, अपने नित्य नियम में लगे रहना, स्वाध्याय-ध्यान में निमग्न रहना इस प्रकार की क्रियाओं से आत्मशुद्धि होती है तात्पर्य यह है कि ज्ञान, दर्शन और चारित्र से ही भाव शुद्धि होती है।

प्र०—सदैव काल भय किसको लगा रहता है ?

उ०—प्रमादी को, जो अच्छे काम करने में प्रमाद करता है उसको सदैव ही भय लगा रहता है इसलिए धर्म कार्यों में प्रमाद न करना चाहिए।

प्रश्नावली।

१. सोलह सतियों के नाम बताओ ?

२. श्रावक का दूसरा नाम क्या है ?

३. जिन वाणी क्या है ?

४. जैन शास्त्र किस भाषा नें हैं ?

५. उपाश्रय में तुमने क्या देखा है ?

६. उन्होंने तुमको क्या शिक्षा दी ?

७. जैन धर्म क्यों अच्छा है ?

पांचवां पाठ।

भली वाणी।

प्र०—बालको ! तुम्हें माता पिता और बड़ों के साथ कैसे बोलना चाहिए ?

उ०—हमें माता पिता और बड़ों के साथ "जी" करके बोलना चाहिए।

प्र०—छोटे भाई और बहनों के साथ किस तरह बोलना चाहिए ?

उ०—उनके साथ प्यार से मीठा बचन बोलना चाहिए।

प्र०—मीठा बोलने से क्या लाभ है ?

उ०—मीठा बोलने से माता पिता और बड़े लोग प्यार करते हैं। मित्र आदर करते हैं।

प्र०—बुरे बालक कौन हैं?

उ०—जो गालियां निकालते हैं वह बुरे बालक होते हैं।

प्र०—गाली देने में क्या बुराई है?

उ०—गाली देने से बुरी आदतें पैदा होती हैं अच्छे मनुष्य गाली देने वाले को पास नहीं बैठने देते।

प्र०—बुरे मनुष्य को गाली देने में हानि है या कि नहीं?

उ०—बुरे मनुष्य को भी गाली नहीं देनी चाहिए क्योंकि गाली देने का अभ्यास पड़ जाता है और कभी भले पुरुषों में बैठे हुए भी मुख से निकल जाती है।

प्र०—तुम जानते हो बालक कैसे गालियां सीख जाते हैं?

उ०—बुरे बालकों के पास बैठने से लड़के गालियां सीख जाते हैं।

प्र०—हमको किन के पास बैठना चाहिए?

उ०—हमको भले पुरुषों के पास बैठना चाहिए।

प्र०—भले मनुष्यों के पास बैठने से क्या लाभ है?

उ०—भले पुरुषों के पास बैठने से भली आदतें पड़ती हैं और आदर से बोलना आ जाता है।

प्र०—बालको! तुम्हारी वाणी कैसी होनी चाहिए?

उ०—हमारी बाणी प्रेम और आदर की होनी चाहिए और कभी गाली नहीं निकालनी चाहिए और ना ही कभी झूठ बोलना चाहिए।

प्र०—यदि हमारी बाणी झूठी होगी तो क्या हानि है?

उ०—झूठ बोलना सब पापों का मूल है। कोई झूठे पर विश्वास नहीं करता। लोग झूठे से घृणा करते हैं। और उसका कोई काम सफल नहीं होता।

प्र०—सत्य में क्या गुण हैं?

उ०—सत्य वचन सब गुणों की खानि है, सत्यवक्ता कोई पाप कर ही नहीं सकता। लोक पर उसके वचन का बड़ा प्रभाव पड़ता है। संसार में उसका यश होता है और वह महात्मा समझा जाता है।

प्र०—काणे को 'काणा' कहने में क्या दोष है?

उ० उसका आत्मा दुःख मानता है और दुःख देना अच्छा नहीं है।

प्र० पशुओं का चमड़ा वर्तने से क्या हानि है?

उ० जब तुम चमड़ा वर्तोगे तब जीव हिंसा और भी होगी, और दया धर्म का नाश हो जायगा इसलिए तुम को चाहिए कि तुम चमड़े वाली वस्तुएं भी वर्तना छोड़ दो, जैसे चमड़े के बटुए, चमड़े की

टोपी, चमड़े के बक्स, चमड़े की घड़ी, चमड़े सहित चाकू इत्यादि ।

प्र० जीव हिंसा से क्या २ हानियें होती हैं ?

उ० दया का नाश, सत्य का नाश, सुख का नाश होता है । यह जीवहिंसा ऋण (कर्ज़ा) है, जब किसी के तुम ने प्राण ले लिए हैं, तब तुम ने उससे प्राणों का ऋण लिया है, इसलिए तुम को वह ऋण देना पड़ेगा (मरना पड़ेगा) ।

प्रश्नावली ।

१. छोटे भाई और बहनों के साथ कैसे बोलना चाहिए ?

२. बुरे बालक कौन हैं ?

३. गाली देने में क्या बुराई है ?

४. तुम जानते हो कि बालक कैसे गालियां सीखते हैं ?

५. भले मनुष्यों के पास बैठने से क्या लाभ है ?

६. यदि हमारी वाणी झूठी होगी तो क्या हानि है ?

७. पशुओं का चमड़ा वर्तने में क्या हानि है ?

८. 'काणे' को काणा कहने में क्या दोष है ?

छठा पाठ।

❀यमपाल नामा चण्डाल।

पूर्वकाल में सुरम्य नाम के देश में पोदनपुर नाम का नगर था, उसका राजा महाबल था, उसी नगर में एक यमपाल नाम का चण्डाल रहता था, जीवों की हिंसा करना ही उसका रोजगार था।

एक दिन उस चण्डाल को सर्प ने काट खाया सो उसे मरा जान उसके कुटुम्बियों ने दग्ध करने को नगर से दूर श्मशान भूमि में लाकर रक्खा था, उसी जगह सर्वौषधि ऋद्धि के धारक कोई मुनि महाराज ध्यानस्थ बैठे थे, सो उनके शरीर की वायु से वह चण्डाल निर्विष हो कर जीवित होगया, और मुनिराज के चरणों में भक्ति पूर्वक नमस्कार करके अपने कल्याणार्थ कुछ व्रत ग्रहण करने की इच्छा प्रगट की, मुनि महाराज ने उसकी हिंसोपजीविका सुनकर उसे कहा कि, चतुर्दशी के दिन

*जैन बालबोध से उद्धृत।

जीव हिंसा करना त्याग दो, उसने पन्द्रह दिन में एक दिन की हिंसा त्याग करना सहज समझ कर दृढ प्रतिज्ञा करली कि प्राण जांय परन्तु चतुर्दशी के दिन किसी जीव को नहीं मारूंगा।

ठीक उसी समय अष्टान्हिका पर्व था, सो महाबल राजा ने आठ दिन तक "कोई भी किसी जीव को न मारे" ऐसा ढंढोरा शहर भर में पिटवा दिया था, किन्तु राजपुत्र बलकुमार मांस भोजी था सो उससे बिना मांस के रहा नहीं गया, उसने राज्य उपवन में राजकीय मेंढे को गुप्त-पने मार कर वा पका कर खाया। जब राजा ने मेंढे की खोज कराई तो बाग के माली के द्वारा ज्ञात हुआ कि राजपुत्र ही इस अपराध का अपराधी है, मेरा पुत्र ही मेरी आज्ञा का खण्डन करता है, इस बात पर राजा को बड़ा क्रोध हुआ, दैवयोग से उस दिन चतुर्दशी थी और उसी यमपाल चण्डाल को राज कुमार के वध करने का हुकम हुआ, राज भृत्य (सिपाही) उसके घर बुलाने को गये तो वह चण्डाल अपने ग्रहण किए हुए अहिंसाव्रत की रक्षार्थ छिप गया और अपनी स्त्री को सिखा दिया कि मुझे कोई बुलाने को आवे तो कह देना कि वह ग्रामान्तर गया है

उसने राजभृत्यों के पूछने पर यही कह दिया राजभृत्यों ने कहा कि देखो भाग्यहीनता (कमनसीबी) इसको कहते हैं कि आज राजपुत्र के मारने में इस चण्डाल को हज़ारों का गहना मिलता, उमर भर के लिये निहाल होजाता, परन्तु भाग्य में वही जंगली जीवों को मार कर उमर भर दुःख पाना लिखा है इसी कारण आज ग्राम को चला गया, इस प्रकार राजभृत्यों के वचन सुनने से चण्डालिनी को लोभ ने चुप नहीं रहने दिया और उसने हाथ का इशारा करके यमपाल का पता बता दिया। राजभृत्यों ने उसे पकड़ कर राजाज्ञा सुनाई कि इस राजपुत्र को मार डालो। यमपाल ने कहा कि आज चतुर्दशी के दिन मैं जीव हिंसा नहीं कर सक्ता, लाचार राजभृत्यों ने उस चण्डाल को राजाज्ञा लोप करने के अपराध में राजा के सम्मुख उपस्थित (हाजिर) किया राजा ने उसे कहा कि "क्यों रे तू मेरी आज्ञा को नहीं मानता"। चण्डाल ने कहा कि हजूर! मैं सर्प के काटने से मरा हुआ मसानों में पड़ा था, एक मुनि महाराज के शरीर की हवा से मैं जीवित होगया। उन महात्मा के उपदेश से मैंने यावज्जीवन हर चतुर्दशी के दिन हिंसा करना छोड़ दिया है सो आप

चाहे मुझे भी शूली पर धर दें परन्तु मैं आज किसी भी जीव को मार कर मुनि महाराज के दिये हुए अहिंसाव्रत को भङ्ग नहीं कर सक्ता, राजा ने लाचार होकर हुकुम दिया कि, इस चण्डाल और पुत्र दोनों को दृढ बन्धनों से बांधकर समुद्र में डाल दो' राजभृत्यों ने तत्काल राजाज्ञा का पालन किया अर्थात् दोनों को बांध कर समुद्र में डाल दिया, किन्तु चण्डाल के दृढ अहिंसाव्रत के प्रभाव से जल देवताओं ने उन दोनों की रक्षा की अर्थात् मणि-मंडित नौका पर रत्न जड़ित सिंहासन पर तो चण्डाल बैठा है, और राजपुत्र उस पर चमर करता है, और जल देवता तथा अन्य देवगण आकाश में से चण्डाल के अहिंसाव्रत को धन्य २ कहते हुए पुष्प वृष्टि करते हैं, इस प्रकार अहिंसाव्रत के प्रभाव को देखकर महाबल राजा ने भी उस चण्डाल को स्नान कराकर अपने सिंहासन पर विठा कर प्रशंसा की।

चण्डाल भी एक दिन के अहिंसाव्रत के प्रत्यक्ष महा फल को देखकर सम्यक्त्व सहित पांच अणुव्रत और सप्त शील धारण करके व्रती श्रावक होगया। उसके व्रत का प्रभाव देखकर हजारों नगर निवासी स्त्री पुरुषों ने भी

अहिंसा आदि पांच अनुव्रत धारण किये तब ही से जैन शास्त्रों में इस चण्डाल की कथा अहिंसाव्रत के प्रभाव दिखाने के लिये यत्र तत्र उदाहरणार्थ लिखी है—

हे बालको ! तुम को भी मन वचन काय से यथाशक्ति त्रस जीवों को अर्थात् चलते फिरते जीवों को मारने वा किसी प्रकार की पीड़ा देने का त्याग करना चाहिये, क्योंकि जैनियों का यही एक परमधर्म है।

सातवां पाठ।

सच्चा साधु।

एक समय मागध देश राजगृह नगर के महाराजा श्रेणिक अपने बड़े सुन्दर मंडि कुक्षि नाम वाले बाग में वायु सेवन के लिए गए उन्होंने एक बड़े सुन्दर मनोहर वृक्ष के नीचे शान्तमुद्रा दमतेन्द्रिय सौम्यमूर्ति दया-युक्त क्षमा से सुशोभित एक नवयुवक मुनि को ध्यान में देखा उसी समय राजा उनकी मोहनी मुद्रा को देख कर बड़ा

ही प्रसन्न हुआ तब राजा के मन में यह वार्त्ता आई कि इस महान् आत्मा ने इस समय और इस यौवन अवस्था में संसार क्यों छोड़ दिया क्योंकि यही अवस्था तो संसारी सुखों के लिए है और यह शांत मुद्रा मुनि रूप से राजकुमार प्रतीत होता है सो इस से यह बात पूछनी चाहिए कि तुमने इस सुअवसर में संसार के सुख क्यों छोड़ दिए इस प्रकार विचार करके राजा उस मुनि के पास आया और तीन प्रदक्षिणा करके निम्न प्रकार से प्रश्न पूछने लगा।

राजा—आपने इस अवस्था में संसार क्यों छोड़ दिया?

मुनि—रे राजन्! मैं अनाथ हूं।

राजा—(हंसकर) मैं तो समझता था कि यह कोई राजकुमार होगा अथवा किसी बड़े सेठ का पुत्र होगा किन्तु यह तो अपने आप को अनाथ बता रहा है अस्तु।

राजा—यदि तुम अनाथ हो तो लो मैं तुम्हारा नाथ बनता हूं क्योंकि यह मनुष्य जन्म बारम्बार मिलना कठिन है।

मुनि—हे राजन्! तुम आप ही अनाथ हो भला जब कोई आप ही अनाथ होता है तो वह और का नाथ कैसे बन सकता है।

राजा—(विस्मय होकर) यह कैसे, मैं तो पृथिवी का नाथ हूं, मेरे तेतीस हजार हाथी हैं, और तेतीस हजार घोड़े हैं, और तेतीस हजार रथ हैं, तेतीस करोड़ सेना है, सम्पूर्ण सुख मुझे प्राप्त हैं तो यह मुनि मुझे अनाथ क्यों कहता है, ऐसे विचार कर राजा कहने लगा। कि हे मुने! मैं तो उक्त ऋद्धि वाला राजा हूं, तब मुनि ने कहा कि हे राजन्! तुम नाथ और अनाथ के स्वरूप को ही नहीं जानते। तब राजा ने हाथ जोड़ कर मुनि से प्रार्थना की, हे मुनि! आप ही मुझे नाथ और अनाथ का स्वरूप सुनाइये। तब मुनि ने कहा कि, हे राजन्! तुम एकाग्रता से नाथ और अनाथ का स्वरूप सुनो।

इसी भारतवर्ष में एक कौशाम्बी नामा नगरी है, जो नगरियों के गुणों से युक्त है उस में एक धनसंचय नाम वाला बड़ा सेठ बसता है उसी सेठ का मैं पुत्र हूं, मुझे बाल्यावस्था में आंखों की वेदना (तकलीफ) होगई, उसी कारण से मेरे सारे शरीर में पीड़ा भी होगई। पीड़ा ने मुझे ऐसा सताया कि मेरा जीना भी कठिन होगया तब मेरे पिता ने बड़े २ वैद्यों को बुलाया मनमाना उन्हें धन

मेरी माता मेरे भाई मेरी बहनें और मेरी स्त्री मेरे दुःख को देखकर बड़े ही दुःखित हुए उन्होंने मेरी बहुत ही सेवा की परन्तु मेरे दुःख को न हटा सके, एक दिन मैंने यह विचार किया कि यदि मुझे इस दुःख से आराम होजावे तो मैं इस संसार को छोड़ कर साधुवृत्ति धारण करलूं। सदा के लिए क्षमा, शीलयुक्त और आरम्भ रहित (हिंसा से रहित) वृत्ति धारण करलूं इस प्रकार विचार करते हुए मुझे निद्रा आगई तो मेरी जैसे रात्रि व्यतीत हुई उसी प्रकार आंखों की तकलीफ भी चली गई तब जब प्रातः काल हुआ तब मेरे सम्बन्धि बड़े ही प्रसन्न हुए। मैंने उन से कहा कि तुम मेरी की हुई प्रतिज्ञा को पूर्ण करो तब उन्हों ने कहा कि बतलाओ, तुम्हारी क्या प्रतिज्ञा है, हम पहले उसे ही पूरी करेंगे, तब मैंने कहा कि, मैं तो दीक्षा लूंगा। हे राजन्! तब मैंने पूछकर दीक्षा धारण करली और मैं साधु बन गया, हे राजन्! उसी समय से मेरा नाथ का जन्म हुआ है पहिले मैं अनाथ ही था अब मैं त्रस और स्थावर जीवों का नाथ बन गया हूं। तथा, हे राजन्!

अप्पा नई वेयरणी अप्पा मे कूड सामली ।
अप्पा काम दुहा धेणू अप्पा मे नन्दनं वनं ॥१॥
अप्पा कत्ता विकत्ताय दुहाणय सुहाणय ।
अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठियो सुप्पट्ठिओ ॥२॥

अर्थ—अपना आत्मा ही नदी वैतरणी है आत्मा ही कूडशामली वृक्ष है आत्मा ही कामदुग्धा गौ है अपनी आत्मा ही नंदन वन है ॥ १ ॥ आपही करता है और आप ही भोगता है दुःखों का कर्त्ता वा सुखों का कर्त्ता भी आप ही है आप ही मित्र वा शत्रु है । जैसे मार्ग में इस आत्मा को ले जाते हो वैसा ही फल इस आत्मा से मिल जाता है ।

इसलिए, हे राजन् ! तुम श्रमण वृत्ति को ठीक समझो जो महानिर्ग्रन्थ हैं उनकी तुम शरण लो यही मार्ग उत्तम है इस वाणी को सुनकर राजा बड़ा ही प्रसन्न हुआ और उसने मुनि से धर्मोपदेश सुन कर सम्यक्त्व व्रत को धारण किया ।

हे बालक, बालिकाओ ! तुम इस कहानी से यह शिक्षा लो कि जो सच्चा साधु होता है वह कैसा निर्भीक और सच्चे अन्तःकरण वाला होता है और इसी मुनि को अनाथी मुनि कहते हैं ।

आठवां पाठ ।

—वन्दना—

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि
वंदामि नमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि
कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि
मत्थएण वंदामि ॥ १ ॥

अर्थ—(तिक्खुत्तो) तीन वार (आयाहिणं) गुरु महाराज के दाक्षिण पासे से लेकर (पयाहिणं) प्रदक्षिणा (करेमि) करता हूं (वंदामि) स्तुति करता हूं (नमंसामि) नमस्कार करता हूं (सक्कारेमि) सत्कार करता हूं (सम्माणेमि) सन्मान करता हूं (गुरु देव कैसे हैं) (कल्लाणं) कल्याणकारी (मंगलं) मंगलकारी (देवयं) धर्म देव (चेइयं) ज्ञान वाले यह चारों ही नाम गुरु महाराज के हैं सो मैं (पज्जुवासामि) ऐसे गुरु महाराज की मन वचन और काय से सेवा करता हूं अपितु (मत्थएण) मस्तक करके (वंदामि) वन्दना करता हूं ।

भावार्थ—उक्त मूल सूत्र में यह वर्णन है कि गुरु महाराज के दक्षिण पासे से लेकर तीन प्रदक्षिणा करके नमस्कार करे और गुरु महाराज का सन्मानादि भली प्रकार करे मस्तक नमाकर वन्दना करे, किन्तु (तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं) यह दोनों सूत्र वन्दना के विधि विधान कर्त्ता हैं, अपितु (करेमि) शब्द से ही वन्दना करने का मूल सूत्र जानना चाहिए ॥

नवमां पाठ।

भजन १

फैला हुआ है सारे, दुनियां में ज्ञान तेरा—टेक
हिंसा को है हटाया, दया मय धर्म बताया।
ममनून होरहा है, इन्सान हैवान तेरा ॥ १ ॥
रागी नहीं तू द्वेषी, तू है हितोपदेशी।
मुनि जन लगा रहे हैं, हिरदे में ध्यान तेरा ॥ २ ॥
प्रमाण नय दिखाया, सत्य का पता लगाया।
धन्यवाद गा रहे हैं, सब एक जबान तेरा ॥ ३ ॥
तू शुद्ध स्वरूप वाला, रस्ते लगाने वाला।
न्यामत अदा न हम से, होगा ऐहसान तेरा ॥ ४ ॥

भजन २

(चाल—यह हाल है निखरे यह क्यों सूरत बनी ग़मकी)

ज्ञान दुर्लभ है दुनियां में, धर्म सब से अमोलक है।
यही भगवान ने भाख्या, धर्म सब से अमोलक है—टेक

रखो तन अपना धन देकर, बचाओ लाज तन देकर।
धर्म पर वार दो सब को, धर्म सब से अमोलक है ॥ १ ॥

धर्म के सामने सब हेच, राज और पाट दुनियां का।
धर्म ही सार है जग में, धर्म सब से अमोलक है ॥ २ ॥
धर्म के वास्ते सीता किया परवेश अग्नी में।
राम तज राज वन पहुंचे, धर्म सब से अमोलक है ॥ ३ ॥
धर्म के वास्ते गर जान भी जाए तो दे दीजे।
समझ लीजे यकीं कीजे, धर्म सब से अमोलक है ॥ ४ ॥

भजन ३

हाथ से कलजुग के दामन को छुड़ाना चाहिए।
धर्म में जिनराज के मन को लगाना चाहिए—टेक

भाई भाई में नहीं झगड़ा उठाना चाहिए।
लड़ झगड़ करके अदालत में न जाना चाहिए ॥ १ ॥
बाप मां को गालियां देते हो करते हो ग़ज़ब।
धर्म का भी तो तुम्हें कुछ ख़ौफ़ खाना चाहिए ॥ २ ॥
षट् कर्म को छोड़कर, शतरंज जुवा खेलते।
इस समझ पे आपके आंसू बहाना चाहिए ॥ ३ ॥
रंडी भडुवों को नचाकर, किस लिए खोते हो धन।
व्यर्थ व्यय को छोड़कर, कालिज बनाना चाहिए ॥ ४ ॥
न्यामत कलयुग चला आता है जल्दी से हमें।
माता पिता गुरु देव की, सेवा भी करनी चाहिए ॥ ५ ॥

भजन ४

तारीफ़ उन गुरों की, जिन्होंने धर्म बताया।

जीवों की रक्षा करना, हिंसा को है हटाया—टेक

दुनियां से पार हो गए, औरों को पार करते।

अमृत सुना के वाणी, मुक्ति का राह बताया ॥ १ ॥

सब को हैं शिक्षा करते, जो पास उनके आवें।

किसी को न तुम सतावो, वैसा ही जीव पराया ॥ २ ॥

जो जीव तुम को दुःख दे, उलटा तू उसको सुख दे।

बाईबल कुरान देखो, वेदों ने ये ही गाया ॥ ३ ॥

जो जीव हिंसा करते, आख़िर वो कष्ट भरते।

कोई नहीं पुकारें सुनता, मोह का अन्धेर छाया ॥ ४ ॥

झूठा है जगत सारा, झूठी है माया ममता।

तेरा न कोई उन में, जिस में तैं दिल लगाया ॥ ५ ॥

सेवा गुरों की कर लो, दुःख दूर होन सारे।

इस दास को भी तारो, मैं शरण तुमरी आया ॥ ६ ॥

शिक्षाएं

(१) किसी जीव को न मारो।

(२) माता पिता की सेवा करनी चाहिए।

(३) आपस में प्रेम से सब को रहना चाहिए।

(४) माता पिता और गुरु की सदा आज्ञा माननी चाहिए।

(५) स्थान २ पर बिना यत्न मत थूको।

(६) कभी भी आलस्य मत करो।

(७) निर्भय बनने का स्वभाव डालो।

(८) बिना सोचे विचारे कोई काम मत करो।

(९) बुध जन स्वदेशी वस्तु का ही सेवन करते हैं।

(१०) भले पुरुषों का सदैव सत्कार करना चाहिए।

(११) किसी की वस्तु बिना पूछे मत उठाओ।

(१२) किसी को गाली मत दो।

(१३) सब से प्यार करो।

(१४) अपनी आत्मा को सदैव पवित्र बनाओ।

(१५) तीर्थंकर महाराज का जाप करो और उनकी शिक्षाओं से औरों को भी पवित्र बनाओ।

सूचना
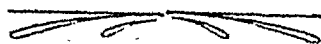
इस शिक्षावली में लिखी गई शिक्षाएं अध्यापकगण विवेक पूर्वक बच्चों को बड़े प्रेम से समझावें क्योंकि उनका हृदय अति कोमल होता है ।

श्रीवीतरागायनमः ।

जैनधर्म शिक्षावली

तीसरा भाग ।

जैनमुनि उपाध्याय आत्माराम जी

[मूल्य ०

तृतीय बार १०००]

° नानूराम जी सुपुत्र ला० मिट्ठीमल जी लुध्याना

चित्र परिचय ।

यह सौम्य । कांति युक्त चित्र किस महानुभाव का है ? इस की मनके हरण करने हारी अलौकिक छवि किस भव्य आत्मा की है ?

इस चित्रकी मुखाकृति पर अति सौंदर्य के धारण करने वाली हसन रूप क्रिया किस प्रकार मनको लुभा रही है ! प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! यह चित्र श्रीमान् श्वेताम्बर स्थानक-वासी जैन लाला मिट्ठी मल लुधियाना निवासी के सुयोग्य पुत्र श्रीमान् लाला वाबूलाल जैनकी है आपका जन्म विक्रम संवत् १९४२ मृगशीर्ष शुक्ला ६ का श्रीमती देवी सरधी जी की कुक्षि से हुआ था आपकी वाल्यावस्था अत्यन्त सुखपूर्वक व्यतीत हुई फिर आपने अपनी योग्यता पूर्वक विद्याध्ययन किया आप वहुत ही शीघ्र अपने व्यापार कर्म में प्रवीण होगये योग्यता पूर्वक व्यापार करने लगे साथ ही जैन मुनियों की संगति के कारण से आप धर्म कार्यों में वहुत भाग लेने लगे इतना ही नहीं किन्तु दानियों की मालाओं में आप का नाम अंकित हो गया आप अनाथों की वा विधवाओं की अन्तःकरण से सहायता करते थे धार्मिक कार्यों में आप ने वहुत ही द्रव्य व्यय किया था तथा जो आज दिन लुधियाना शहर में जैन कन्या पाठ-शाला वड़े अच्छे रूप में चल रही है इसकी स्थापना में मुख्य कारण आप ही थे आपने इस पाठशाला की रक्षार्थ वहुत सा

द्रव्य व्यय किया था जो जैन गृहस्थ आप से किसी प्रकार की प्रार्थना करता था आप उसको निराश नहीं करते थे इसी दान के माहात्म्य से आप का शुभ नाम दूर देशान्तर में विस्तृत हो गया था, आप विद्या प्रेमी भी अतीव थे जो कोई विद्या के लिये आप से चंदा मांगता था वह अपनी इच्छानुकूल द्रव्य पा लेता था श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी ऑल इंडिया जैन कान्फ़रन्स और पंजाब जैन कान्फ़रन्स में आप बहुत सा भाग लेते थे दोनों कान्फरन्सों की उन्नति के लिये आप ने बहुत सा द्रव्य व्यय किया यत्र तत्र धार्मिक संस्थाओं का नाम आप सुनते थे आप उसकी रक्षा के लिये यथा शक्ति द्रव्य की सहायता उस संस्था को पहुँचाते थे कि बहुना जैन धर्म से आपको असीम प्रेम था जैन साधुओं की भक्ति आप के हृदय में बड़ी सुदृढ़ता के साथ अंकित होरही थी। आप उनकी यथोचित सेवा भक्ति करके लाभ उठाते थे। विद्यार्थी साधुओं के लिये भी आप की ओर से सुचारु प्रबन्ध शीघ्र ही होजाता था। हा शोक! काल की कैसी विचित्र घटना है एक परमोत्साही जैन युवक को समय भली प्रकार से न देख सका यही कारण था कि इस नश्वर संसार से आप संवत् १९७९ आषाढ कृष्णा ११ अपने वृद्ध पिता लाला मिट्ठीमल को और अपनी भावी होनहार सन्तान तथा अपने सर्व परिवार को वियोग रूपी सागर में छोड़ कर स्वर्गवासी बन गये परन्तु काल करते समय भी आपने अपनी सदैव यशोगान करने वाली दान शैली

को विस्मृत नहीं होने दिया था अन्य दान करते समय आपने धर्म कार्य में व्यय करने के लिये भी ५००) रुपये दान कर दिये सत्य है सत्पुरुष नाना प्रकार की विपत्तियों के आने पर भी अपनी प्रकृति से यत् किंचन्मात्र भी विचलित नहीं होने पाते हम आप के फले फूले परिवार से सहानुभूति करते हैं और श्री जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करते हैं कि आपकी आत्मा को शान्ति मिले। इसमें कोई भी आश्चर्य नहीं कि पुण्यात्माओं की प्रायः संतति भी पुण्य रूप ही होती है। आप का अनुकरण करने वाले आप के सुपुत्र लाला गुजरमल लाला सोहनलाल व लाला ब्रजलाल भी धर्म कार्यों में बहुत सा भाग लेते रहते हैं आप की वृद्धा भगिनी श्रीमती धन देवी (धन्नो) और आप की धर्म पत्नी श्रीमती द्वारिका देवी धर्म कार्यों में उत्साह पूर्वक काम कर रही हैं आप इस विनश्वर संसार में अपनी तीन कन्यायें और तीनों ही सुपुत्रों को छोड़ गये हैं हम श्री जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करते हैं कि जिस प्रकार धर्म कार्यों में आप का अन्तःकरण लगा रहता था और जैन जाति के उन्नत करने के लिये आप अनेक प्रकार के मार्गों का अन्वेषण किया करते थे उसी प्रकार आपका पवित्र अनुकरण आप का सकल परिवार भी किये जारहा है इसी प्रकार आगामी काल में भी करता रहे यही हमारी अंतरंग भावना है यह "जैन शिक्षावली" नामक ग्रन्थ के पाचों ही भाग आपके सुपुत्रों ने आप का नाम चिरस्थायी करने के लिये और आप की स्मृति के

लिये आप के दान किये हुये द्रव्य से मुद्रित किये हैं क्योंकि यह ग्रन्थ कई वार मुद्रित हो भी चुका है परन्तु पाठशालाओं में इस ग्रन्थ को प्रायः प्रत्येक श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन ने इस ग्रन्थ को स्थान दिया है अतः इसकी अतीव मांगें आने पर आप के पूज्य पिताजी और सुपुत्रों ने आपकी स्मृति के लिये मुद्रित करवा के श्री संघ पर परम उपकार किया है जिनसे वे धन्यवाद के पात्र हैं। अतएव हम उन सव को सहर्ष धन्यवाद देते हुये श्री संघ से आवश्यकीय प्रार्थना किये विना नहीं रह सकते कि धर्म कार्यों में आप लोग भी श्रीमान् लाला वावूलाल जैन का अनुकरण करके जैन धर्म को उन्नति के शिखर पर पहुँचाते हुये अक्षय सुख की प्राप्ति करें और साथ ही श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के प्रतिपादन किये हुये श्री अहिंसा धर्म के प्रचार से जनता में शान्ति स्थापन करें।

निवेदक

जैन कन्या पाठशाला के सभासद्

श्रीवर्द्धमानायनमः ।

जैन धर्म शिक्षावली

* तीसरा भाग *

लेखक

उपाध्याय जैनमुनि श्री आत्मारामजी

महाराज ।

—0—

प्रकाशक

ला० मिट्ठीमल बाबूराम जी जैन

चौड़ा बाज़ार, लुधियाना ।

एङ्गलो ओरीयण्टल प्रैस चैम्बरलेन रोड लाहौर में

लालजीदास के अधिकार से छपा ।

तृतीयावृत्ति १०००] [1925.
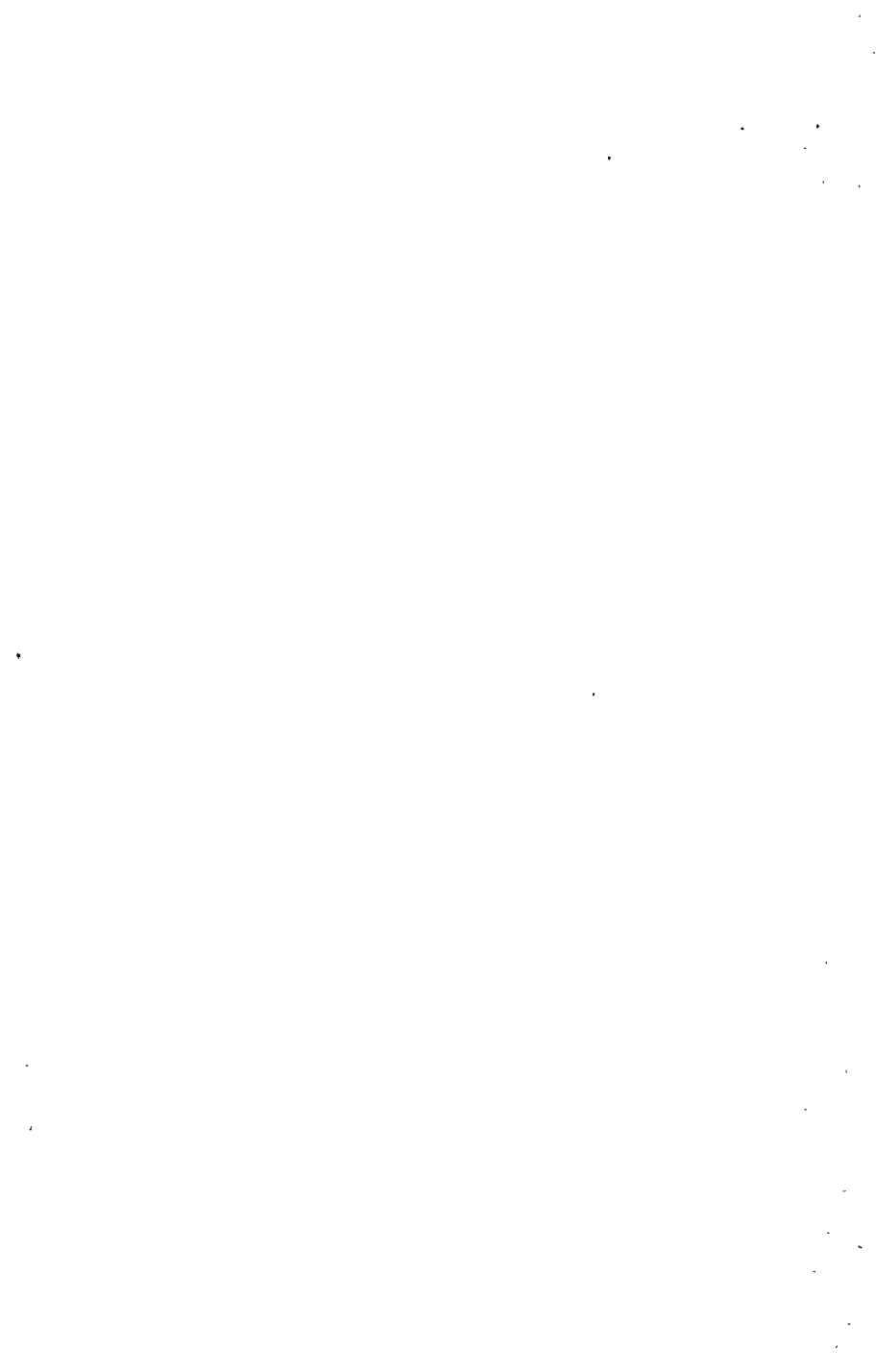
श्रीजैनधर्म की जय ! श्रीमहावीर स्वामी की जय !

❀ जैनधर्म शिक्षावली ❀

❀ तीसरा भाग ❀

प्रथम पाठ ।

सूत्रों के विषय ।

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्व भूएसु, वैरं मज्झं न केणई ॥ १ ॥

अर्थ-(खामेमि) मैं क्षमापण करता हूं, (सव्वे) सर्व (जीवा) जीवों को (सव्वे) हे सब (जीवा) जीवो ! (खमंतु मे) मेरे पर भी तुम क्षमा करो, क्योंकि

(मित्ती) मैत्रीभाव है । (मे) मेरा (सव्व) सब (भूएसु) जीवों में अपितु (वेरं) वैरभाव (मज्झं) मेरा (न केणई) किसी जीव के साथ भी नहीं है ।

भावार्थ—मैं सब जीवों से क्षमा की प्रार्थना करता हूं और, हे सब जीवो ! तुम भी मेरे पर क्षमा करो, क्योंकि मेरी मित्रता सब जीवों से है, किन्तु मेरा वैरभाव किसी भी जीव के साथ नहीं है ।

प्रश्न—यह सुन्दर पाठ किस स्थान का है ?

उत्तर—जैन सूत्रों का ।

प्र०—कौन से जैन सूत्र में यह पाठ आया है ?

उ०—आवश्यक सूत्र में ।

प्र०—आवश्यक सूत्र का क्या अर्थ है ?

उ०—जिस सूत्र के पाठ अवश्यमेव पढ़े जाएं अर्थात् जिन पाठों को साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका दोनों समय अवश्य पढ़ते हैं ।

प्र०—आवश्यक सूत्र के सारे कितने अध्याय हैं ?

उ०—छैः ६ ।

प्र०—उनके नाम क्या २ हैं ?

उ०—१ सामायिक, २ चतुर्विंशति, ३ वन्दना, ४ प्रतिक्रमण ५ कायोत्सर्ग और ६ प्रत्याख्यान ।

प्र०—जैन सूत्र कितने हैं ?

उ०—आजकल बत्तीस जैन सूत्र माने जाते हैं।

प्र०—क्या जैनी बत्तीस ही जैन सूत्र मानते हैं ?

उ०—प्रामाणिक बत्तीस ही जैन सूत्र माने जाते हैं किन्तु जो और सूत्र वा ग्रन्थ हैं उनके पाठ जो २ बत्तीस सूत्रों से प्रतिकूल नहीं हैं, वह भी मानने योग्य हैं।

प्र०—बत्तीस सूत्र ही क्यों प्रामाणिक हैं और क्यों नहीं ?

उ०—यह सूत्र आप्त प्रणीत (सर्वज्ञोक्त) हैं परस्पर विरुद्ध भावों के उपदेष्टा नहीं हैं इन में यथार्थ और बुद्धि संघटित भावों का विस्तारपूर्वक कथन किया गया है अपितु इतना ही नहीं किन्तु युक्ति संगत कथन है।

प्र०—बत्तीस सूत्र किस प्रकार से गिने जाते हैं ?

उ०—अंग सूत्र—उपाङ्ग सूत्र, मूल सूत्र, छेद सूत्र और आवश्यक सूत्र।

प्र०—अङ्ग सूत्र कितने हैं ?

उ०—द्वादश (बारह) १२।

प्र०—उनके नाम बताओ ?

उ०—आचाराङ्ग सूत्र १ सूयगडाङ्ग सूत्र २ स्थानाङ्ग सूत्र ३ समवायाङ्ग सूत्र ४ विवाह प्रज्ञप्ति सूत्र ५ ज्ञाताधर्म-कथाङ्ग सूत्र ६ उपासकदशाङ्ग सूत्र ७ अंतगड सूत्र ८

अनुत्तरोपपातिक सूत्र ९ प्रश्न व्याकरण सूत्र १०
विपाक सूत्र ११ और दृष्टिवादाङ्ग सूत्र १२।

प्र०—उपाङ्ग सूत्र कितने हैं ?

उ०—बारह १२।

प्र०—उनके नाम बताओ ?

उ०—उववाई सूत्र १ राजप्रश्नीय सूत्र २ जीवाभिगम सूत्र ३
पन्नवणा सूत्र ४ जंबुद्वीप पन्नत्ती ५ चन्द पन्नत्ती ६
सूर पन्नत्ती ७ निरावलिका ८ कप्प वडिंसमा ९
पुप्फिया १० पुप्फ चूलिया ११ वण्ही दिसा १२।

प्र०—मूल सूत्र कितने हैं ?

उ०—चार ४।

प्र०—उनके नाम सुनाओ ?

उ०—दशवैकालिक सूत्र १ उत्तराध्ययन सूत्र २ नंदी सूत्र ३
अनुयोग द्वार सूत्र ४।

प्र०—छेद सूत्र कितने हैं ?

उ०—चार ४।

प्र०—उनके नाम भी बतलाओ ?

उ०—निशीथ सूत्र १ दशाश्रुतस्कंध सूत्र २ वृहत्कल्प सूत्र ३
व्यवहार सूत्र ४।

प्र०—उक्त बत्तीस सूत्रों में तो आवश्यक सूत्र का नाम नहीं है तो क्या इस सूत्र को अलग गिनते हो ?

उ०—नहीं, किन्तु आजकल बारह अंगसूत्रों में जो बारहवां दृष्टिवादाङ्ग सूत्र है वह नहीं है इसलिए आवश्यक सूत्र को मिलाकर ही ३२ सूत्र गिने जाते हैं।

प्र०—सूत्र शब्द का मुख्य क्या अर्थ है ?

उ०—जो सूचना करे, और अक्षर स्तोक (थोड़े) तथा अर्थ बहुत होवें तथा अर्थ को सीवे उसे ही सूत्र कहते हैं।

प्र०—अनुयोग किसे कहते हैं ?

उ०—सूत्र के साथ अर्थ की योजना करनी तथा सूत्र की विस्तारपूर्वक व्याख्या उसी का नाम अनुयोग है।

प्र०—अनुयोग कितने प्रकार से कहे गए हैं ?

उ०—चार प्रकार से।

प्र०—वे कौन २ से हैं ?

उ०—चरण करणानुयोग १ धर्मानुयोग २ गणितानुयोग ३ द्रव्यानुयोग ४।

प्र०—चरण करणानुयोग के सूत्र कौन २ से हैं ?

प्र०—कालिक सूत्र, जैसे आचारांगादि।

उ०—धर्मानुयोग के सूत्र कौन २ से हैं ?

उ०—ऋषिभाषित आदि सूत्र, जैसे उत्तराध्ययनादि।

प्र०—गणितानुयोग के सूत्र कौन २ से हैं ?

उ०—सूर्य प्रज्ञप्ति और चन्द्र प्रज्ञप्ति आदि ।

प्र०—द्रव्यानुयोग के सूत्र कौन २ से हैं ?

उ०—जिन में षट् द्रव्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है जैसे दृष्टिवादाङ्ग सूत्रादि ।

प्र०—इन सूत्रों में एकान्तवाद का वर्णन है याकि अनेकान्त वाद का कथन है ?

उ०—इन सूत्रों में अनेकान्तवाद स्वीकार किया गया है और एकान्तवाद का खंडन किया गया है ।

प्र०—एकान्तवाद और अनेकान्तवाद का क्या अर्थ है ?

उ०—एकान्तवाद वस्तु को ऐसे ही मानता है और अनेकान्तवाद ऐसे भी है इस प्रकार से मानता है ।

प्र०—इस में कोई दृष्टान्त दो ?

उ०—जैसे घड़ा नित्य भी है और अनित्य भी है पुद्गल द्रव्य नित्य है, जो कार्य रूप घट है वह अनित्य है ।

प्र०—क्या अनेकान्तवाद पुरुषों में भी लग जाता है ?

उ०—ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जिस में अनेकान्तवाद न लगता हो, इसलिए पुरुषों में भी अनेकान्तवाद लग जाता है ।

प्र०—इस पर कोई दृष्टान्त दो ?

उ०—पुरुष चार प्रकार के होते हैं जैसे कि एक मिलने में तो भद्र हैं परन्तु सदैव पास रहने से फिर भद्र नहीं हैं एक पास रहने में तो भद्र हैं किन्तु पहिले मिलने में भद्र नहीं हैं २ एक मिलने में भी भद्र और पास रहने से भी भद्र ३ एक न तो मिलने में भद्र और न पास रहने में भद्र ४।

प्र०—इन में श्रेष्ठ कौन २ से हैं ?

उ०—दूसरे और तीसरे अंक के पुरुष तो अच्छे हैं किन्तु पहिले और चौथे अंक के पुरुष अच्छे नहीं हैं।

प्र०—क्या सर्व पुरुष अच्छे नहीं होते हैं ?

उ०—नहीं, क्योंकि पुरुष चार प्रकार के होते हैं।

प्र०—वे कौन २ से हैं ?

उ०—एक देखने में ऊपर से तो अच्छे होते हैं किन्तु अभ्यन्तर से कठोर हैं १ दूसरे भीतर से सकोमल हैं परन्तु ऊपर से कठोर हैं २ तीसरे ऊपर से और भीतर सकोमल हैं ३ चौथे ऊपर और भीतर से कठोर हैं ४।

प्र०—क्या फल भी चार प्रकार के होते हैं ?

उ०—हां।

प्र०—वे कौन २ से हैं ?

उ०—छुहारा, बादाम, दाख और सुपारी, इसी प्रकार के ऊपर कहे हुए पुरुष भी हैं।

प्रश्नावली।
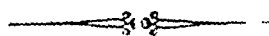
१—आवश्यक सूत्र के कितने अध्याय हैं और उनके नाम क्या हैं?

२—बत्तीस सूत्रों के नाम बताओ?

३—उपाङ्ग सूत्र कितने हैं?

४—छेद सूत्र कौन २ से हैं?

५—मूल सूत्रों के नाम सुनाओ?

६—अनुयोग कितने हैं?

७—पुरुष कितने प्रकार के होते हैं?

८—अनेकान्तवाद का क्या अर्थ है?

९—सूत्र शब्द का क्या अर्थ है?

१०—आवश्यक सूत्र का अर्थ क्या है?

द्वितीय पाठ

बत्तीस सूत्रों के समास विषय ।

प्र०—आचाराङ्ग सूत्र में किस वस्तु का विस्तार किया गया है?

उ०—सदाचार विषय का भली भांति से विस्तार किया है और इसी विषय को प्रबल युक्तियों से सिद्ध किया है कि सदाचार ही पुरुषों का भूषण है इसी से ज्ञानादि की सफलता होती है इत्यादि ।

प्र०—सूयगडाङ्ग सूत्र में क्या वर्णन है ?

उ०—जैन मत वा अन्यमतों के सिद्धान्त बड़ी युक्ति से दिखलाए गए हैं और युक्ति पूर्वक उनकी समालोचना भी की गई है अन्त में अनेकान्त [जैन] वाद को सर्वोत्कृष्ट बतलाया गया है ।

प्र०—स्थानाङ्ग सूत्र में किस वस्तु का विस्तार किया गया है ?

उ०—एक अङ्क से लेकर दश अङ्कों पर्यन्त सर्व पदार्थों का वर्णन कर दिया है जैसे कि आत्मा एक है, जीव और अजीव दो द्रव्य हैं। स्त्री पुरुष नपुंसक यही

तीनों वेद हैं चारों गतिएं हैं पांच महाव्रत हैं षट् काय हैं, सप्तस्वर, अष्टवचन, विभक्तिएं, नव ब्रह्मचर्य की गुप्तिएं, दश प्रकार के सुख इस प्रकार हर एक पदार्थ की युक्ति पूर्वक व्याख्या की गई है और इसमें सिद्धान्त और उपदेश तो कूट कूट कर भरा हुआ है।

प्र०—समवायाङ्ग सूत्र में क्या वर्णन है ?

उ०—इसमें संख्या के क्रम से पदार्थों का वर्णन किया है अन्त में तीर्थङ्करों चक्रवर्त्तियों वा वासुदेव बलदेवों का भी वर्णन किया गया है।

प्र०—भगवती [विवाह प्रज्ञप्ति] सूत्र में क्या अधिकार आता है ?

उ०—यह सूत्र प्रश्नोत्तर की शैली से निर्मित है, भगवान् महावीर स्वामी के साथ गौतम आदि मुनियों वा देवों वा राजकुमारों वा राजकुमारियों वा सेठ सेठानियों के नाना प्रकार के प्रश्नोत्तरों का वर्णन है, इसमें ३६ हजार प्रश्नोत्तर हैं वे भव्य प्राणियों के सब पढ़ने योग्य हैं पदार्थ विद्या के अनुसार प्रश्नोत्तर हैं।

प्र०—ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र में किन २ विषयों का अधिकार है ?

उ०—इस सूत्र में बड़े उत्तम शिक्षाप्रद धर्मात्मा पुरुषों के दृष्टान्तों द्वारा भव्य जीवों के शिक्षित बनाने की चेष्टा की गई है, इस से यह दृष्टान्त बड़े रमणीय युक्ति सङ्गत हर एक प्राणी के मनन करने योग्य हैं।

प्र०—उपासक दशाङ्ग सूत्र में क्या अधिकार है ?

उ०—श्रावक धर्म बड़ी उत्तम रीति से वर्णन किया गया है इतना ही नहीं किन्तु गृहस्थों के कर्त्तव्य और उनके करणीय कार्यों का भली प्रकार से दिग्दर्शन कराया गया है।

प्र०—अंतगड सूत्र में क्या वर्णन है ?

उ०—जो आत्माएं अन्त समय मोक्ष पधारे हैं उनके जीवन चरित्र दिखलाए गए हैं।

प्र०—अनुत्तरोपपातिक सूत्र में किस का अधिकार किया गया है ?

उ०—जो आत्माएं अनुत्तरविमानों में उत्पन्न हुई हैं उनके जीवन चरित्र दिखलाए गए हैं।

प्र०—प्रश्न व्याकरण सूत्र में क्या अधिकार है।

उ०—इस सूत्र में अहिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और

परिग्रह के विषय में बड़े उत्तम व्याख्यान दिए गए हैं और उनके इहलौकिक पारलौकिक फल भी दिखलाए गए हैं, साथ ही अहिंसा, सत्य, अचौर्यकर्म, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की व्याख्या बड़ी ही सुन्दर रीति से की गई है इसलिए यह सूत्र प्रत्येक जिज्ञासु के पढ़ने योग्य है।

प्र०—विपाक सूत्र में क्या अधिकार है ?

उ०—इस सूत्र में कर्मों के फलों का अधिकार दिखलाया गया है और साथ ही न्याय और अन्याय का फल बड़ी सुन्दर शैली से वर्णन किया गया है।

प्र०—दृष्टिवाद सूत्र में क्या वर्णन है ?

उ०—जीवद्रव्य और अजीव द्रव्य की महती व्याख्या की गई है ऐसा कोई भी विषय नहीं है जो इस में न आगया हो।

प्र०—उववाई सूत्र में क्या वर्णन है ?

उ०—आत्मा किस प्रकार से और किन २ कर्मों से योनियों (भवान्तर) में उत्पन्न होता है उनका और प्रसङ्ग-वशात् भगवान् महावीर स्वामी और कुणिक महाराज की भक्ति का भी दिग्दर्शन कराया गया है इतना ही नहीं किन्तु राजनीति का भी वर्णन भली प्रकार

से किया गया है साथ ही उस समय के भारत का रमणीय चित्र भी खींचा गया है जिससे प्रतीत होता है कि हमारे पूर्वजों का समय कैसा सुखमय और स्वतन्त्रता का था और शिल्पकला कैसी उन्नत थी। भारत के अङ्गदेश की मुख्य राजधानी चंपानगरी कैसी उन्नति के शिखर पर पहुंची हुई थी और ऋषि मुनि भी अपने कर्त्तव्यों को बड़ी उत्तम रीति से पालन करते थे राजा और प्रजा में संप और परस्पर पिता पुत्र के सम्बन्ध से नीति अपना काम करती थी।

प्र०—राजप्रश्नीय सूत्र में क्या अधिकार है।

उ०—महाराजा प्रदेशी के नास्तिक मत सम्बन्धि ११ प्रश्नोत्तर हैं जो श्री केशी कुमार श्रमण के साथ हुए हैं वे प्रश्नोत्तर विज्ञान दृष्टि से देखे जाएं तो बड़े महत्त्व के हैं और साथ ही महाविमान सूर्याभ का भी वर्णन किया गया है।

प्र०—जीवाभिगम सूत्र में क्या वर्णन है ?

उ०—जीव और अजीव का भली भांति से बोध कराया गया है साथ ही समुंद्रा और द्वीपों का भी परिचय दिया है।

प्र०—पन्नवणा सूत्र में क्या वर्णन है ?

उ०—इस में बड़ा ही सूक्ष्म ज्ञान का वर्णन किया गया है और कर्म प्रकृतियों का तो बड़ा ही अद्भुत वर्णन है इसका वेत्ता पूर्ण तत्वों का वेत्ता होजाता है।

प्र०—जंवुद्वीप प्रज्ञप्ति में क्या वर्णन है ?

उ०—जम्बुद्वीप का विस्तारपूर्वक वर्णन है और उसके भारत खण्ड के देशों का भी वर्णन किया गया है साथ ही भरत चक्रवर्त्ति की दिग्विजय का भी अधिकार आया हुआ है इसके पढ़ने से जैन भूगोल का बोध भली भांति से होजाता है।

प्र०—चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र में क्या वर्णन है ?

उ०—ज्योतिपियों के मुख्य इन्द्र चन्द्रमा का वर्णन है और संपूर्ण ज्योतिप चक्र का भी वर्णन किया गया है यह सूत्र ज्योतिप सम्बन्धी है।

प्र०—सूर्य प्रज्ञप्ति में क्या अधिकार है ?

उ०—इस में सूर्य का अधिकार है और सम्पूर्ण ज्योतिपियों वा ग्रहादि का विस्तार किया गया है यह दोनों सूत्र खगोल विद्या के गिने जाते हैं इस में आकाश सम्बन्धी चमत्कारों का बड़ा ही अद्भुत वर्णन किया गया है जो इनको पढ़ते हैं वे दैवज्ञ कहे जाते हैं प्रसंग-

वशात् फलादेश वा गणित विद्या के तो यह दोनों मुख्य शास्त्र हैं।

प्र०—निरावालिका सूत्र में क्या वर्णन है ?

उ०—महाराजा कुणिक के महा-संग्राम का वर्णन किया गया है जिस में कालिकुमारादि दशों भाई काम आए हैं, संग्राम नीति और उसका परिणाम इस सूत्र में दिखलाया गया है जो आत्माएं कल्प देवलोकों में उत्पन्न हुए हैं उनकी व्याख्या की गई है।

प्र०—पुप्फिया चूलिया सूत्र में क्या वर्णन है ?

उ०—इस में भी देवलोक में गए हुए जीवों का वर्णन है श्री देवी आदि देवियों का विस्तारपूर्वक कथन किया गया है।

प्र०—पुप्फिया सूत्र में क्या वर्णन है ?

उ०—शुक्र आदि ग्रहों की उत्पत्ति का वर्णन और उनके पिछले जन्म का भी दिग्दर्शन कराया गया है।

प्र०—वण्हिदिसा सूत्र में क्या वर्णन है ?

उ०—इस सूत्र में बलदेव के पुत्रों का वर्णन किया गया है जो श्री अरिष्टनेमि भगवान् के पास दीक्षित होकर देवलोकों में गए हैं।

प्र०—नशीथ सूत्र में किस विषय के अधिकार का कथन किया गया है ?

उ०—ज्ञान दर्शन और चरित्र में जो दोष लगते हैं उनकी शुद्धि के लिए विस्तारपूर्वक प्रायश्चित की विधि का विधान किया है और वह विधि सदैव काल उपादेय हैं युक्ति संगत और आत्म दमन का मुख्य उपाय है यह सूत्र नेताओं को कंठस्थ रखने योग्य है ।

प्र०—दशाश्रुत स्कन्ध सूत्र में क्या विषय है ?

उ०—इस में उभय लोक शिक्षाप्रद (सुखप्रद) शिक्षाओं का वर्णन किया गया है जो प्रत्येक प्राणी के कंठस्थ करनें योग्य है अति चमत्कारी वर्णन इस सूत्र में किया है ।

प्र०—बृहत्कल्प सूत्र में क्या वर्णन है ?

उ०—साधु साध्वी के पूर्ण आचार का वर्णन इस सूत्र में दिखलाया गया है ।

प्र०—व्यवहार सूत्र में क्या अधिकार है ?

उ०—साधु की क्रियाओं का विस्तार पूर्वक कथन किया गया है और साथ ही आचार्य, उपाध्याय, गणि, गणा-वच्छेदक, प्रवर्त्तक, स्थविर आदि पदवियों का वर्णन और इनके कर्त्तव्य भी दिखलाये गये हैं, आर्याओं

का भी विस्तार पूर्वक कथन किया गया है, शास्त्राध्ययन विधि वा तप विधि का भी दिग्दर्शन करा दिया है यह सूत्र भी मुख्य २ नेताओं के कण्ठस्थ करने योग्य है ।

प्र०—दशवैकालिक सूत्र में क्या वर्णन है ?

उ०—प्रथम श्रेणि के नव दीक्षित मुनि का आचार बड़ी योग्यता के साथ वर्णन किया है नित्य कर्मों को किस विधि से पालन करना चाहिये इस विषय में उपदेश विस्तार पूर्वक दिखलाया हुआ है, यद्यपि यह सूत्र आज कल प्रथम श्रेणि का गिना जाता है किन्तु इस में शिक्षा बड़ी उच्चकोटि की दी हुई है, इस का पाठ प्रत्येक मुनि को नित्य प्रति करना चाहिये ।

प्र०—उत्तराध्ययन सूत्र में क्या वर्णन है ?

उ०—इस सूत्र में, जैन सिद्धान्त, उपदेश और इतिहास यह तीनों विषय दिखलाये गये हैं ऐसा कोई भी विषय शेष नहीं रहा जो इस सूत्र में सूत्र रूप से न कथन किया हो और स्तोक (थोड़े) वर्णों का बड़ा अर्थ इसमें प्रतिपादन किया हुआ है यह सूत्र प्रत्येक प्राणी के कण्ठस्थ करने योग्य है इसके ऊपर अनेक

आचार्यों ने संस्कृत टीकाएं लिखी हैं जो पांच दस तो सुप्रसिद्ध हैं किन्तु सुनने में २६ टीकायें आती हैं।

प्र०—नन्दी सूत्र में क्या अधिकार है ?

उ०—मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यव ज्ञान और केवल ज्ञान, इन पांचों ज्ञानों का विस्तार पूर्वक कथन किया हुआ है अनेक उदाहरणों द्वारा इनकी सिद्धि की गई है यह जैन न्याय सूत्र के नाम से सुप्रसिद्ध है।

प्र०—अनुयोगद्वार सूत्र में क्या वर्णन है ?

उ०—व्याख्या करने की शैली इसमें दिखलाई गई है साथ ही व्याकरण विषय, प्रमाण विषय, नय विषय, निक्षेप विषय, निरुक्ति आदि के विषय विस्तारपूर्वक कथन किये हुए हैं जिन्होंने सूत्र व्याख्या करनी हो वा व्याख्यान शैली सीखनी हो उनके यह सूत्र कण्ठस्थ ही होना चाहिये इसमें प्रसंगवशात् सर्व विषयों का समावेश किया गया है जैसे कि सप्तस्वर, नवरस, सप्तगोत्र इत्यादि।

प्र०—आवश्यक सूत्र में क्या वर्णन है ?

उ०—साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओं के मुख्य २ कर्त्तव्यों का वर्णन किया हुआ है।

प्र०—यह सूत्र किस भाषा में उपलब्ध होते हैं ?

उ०—मूलसूत्र यह सब प्राकृत (अर्द्धमागधी) भाषा में प्रतिपादन किए हुए हैं किन्तु अनुवाद, संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मारवाड़ी, इंगलिश, जर्मनी आदि भाषाओं में भी मिलते हैं, उनके पढ़ने से भी इनका मूलतत्त्व ज्ञात हो सकता है किन्तु यदि प्राकृत का बोध हो जाए तब तो इनका पूर्ण रस उपलब्ध हो जाता है ।

तृतीय पाठ

त्रस और स्थावर विषय ।

प्र०—त्रस कितने प्रकार से वर्णन किए गए हैं ?

उ०—चार प्रकार से ।

प्र०—वे कौन २ से हैं ?

उ०—दो इन्द्रिय वाले जीव १, तीन इन्द्रिय वाले जीव २ चार इन्द्रिय वाले जीव ३, और पांच इन्द्रियों वाले जीव ४ ।

प्र०—पांच इन्द्रियों वाले जीव कौनसे हैं ?

उ०नारकीय, पशु, मनुष्य और देव ।

प्र०—नारकीय जीव कहां पर हैं ?

उ०—इस पृथ्वी के नीचे सात नरकें हैं उनमें जो जीव रहते हैं वे नारकीय हैं और बड़े ही दुःखी हैं ।

प्र०—नरकों में कौन जाते हैं ?

उ०—पाप कर्म करने वाले (बुरा काम करने वाले)।

प्र०—पांच इन्द्रिय वाले पशु कितने प्रकार से वर्णन किए गए हैं, और वे कौन २ से हैं ?

उ०—तीन प्रकार से, जैसे जलचर-मत्स्यादि, स्थलचर-गोआदि, खेचर-कबूतर आदि पक्षी ।

प्र०—मनुष्य कितने प्रकार से कहे गए हैं ?

उ०—दो प्रकार से, जैसे कि आर्य और अनार्य ।

प्र०—आर्य किसे कहते हैं ?

उ०—जो श्रेष्ठ, विद्वान् और दयालु मनुष्य हो ।

प्र०—अनार्य किसे कहते हैं ?

उ०—जो दया से रहित हो (निर्दयी) ।

प्र०—देव कितने प्रकार के हैं ?

उ०—चार प्रकार के ।

प्र०—वे कौन २ से हैं ?

उ०—भवन पति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, और वैमानिक।

प्र०—स्थावर जीव कितने प्रकार के हैं?

उ०—पांच प्रकार के।

प्र०—वे कौन २ से हैं?

उ०—मिट्टी के जीव, पानी के जीव, अग्नि के जीव, वायु के जीव, और वनस्पति के जीव।

प्र०—मिट्टी में, पानी में, अग्नि में, वायु में, कितने २ जीव हैं?

उ०—असंख्यात (जो गणना में न आ सकें)

प्र०—वनस्पति में कितने जीव हैं?

उ०—अनन्त।

प्र०—वे जीव कौन से हैं जो न तो त्रस हैं और न स्थावर हैं?

उ०—मोक्ष आत्मा, सिद्ध भगवान्।

प्र०—उन के क्या २ नाम हैं?

उ०—अजर, अमर, सिद्ध, बुद्ध, परमेश्वर, परमात्मा, ईश्वर सर्वज्ञ इत्यादि अनन्त नाम हैं।

प्र०—अजर, अमर आदि के नाम जपने से हम को क्या लाभ होता है?

उ०—चित्त को शान्ति आती है भाव शुद्ध हो जाते हैं जैसे अग्नि के पास बैठने से शीत दूर हो जाता है

वैसे ही भगवान् के जाप से पाप (दुःख) दूर हो जाते हैं ।

प्रश्नावली ।

१—त्रस कितने प्रकार के हैं ?

२—स्थावर कितने प्रकार के हैं ?

३—त्रस जीवों के नाम वताओ ?

४—स्थावरों के नाम वताओ ?

५—आर्य किसे कहते हैं ?

६—अनार्य किसे कहते हैं ?

७—मोक्ष आत्माओं के क्या क्या नाम हैं ?

८—उन के जाप से हम को क्या लाभ होता है ?

चौथा पाठ।

पच्चीस बोल के थोकड़े के ११वें बोल से लेकर १३वें बोल तक।
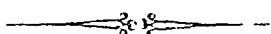
प्र०—गुण स्थान किसे कहते हैं ?

उ०—मोह और योग के निमित्त से सम्यग् दर्शन सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चारित्र रूप आत्मा के गुणों की तारतम्य रूप अवस्था विशेष को गुणस्थान कहते हैं।

प्र०—गुण स्थान कितने हैं ?

उ०—चौदह १४।

प्र०—उनके नाम क्या २ हैं ?

उ०—१ मिथ्यात्व, २ सासादन (सास्वादन), ३ मिश्र, ४ अविरत सम्यक् दृष्टि, ५ देशविरत (देशव्रती) ६ प्रमत्तविरत, (प्रमादी), ७ अप्रमत्तविरत, (अप्रमादी), ८ अपूर्व करण, ९ (निवर्तिबादर) अनिवर्त्तिबादर (अनिर्वृत्तिकरण), १० सूक्ष्म सम्पराय, ११ उपशान्तमोहनीय, १२ क्षीणमोहनीय, १३ संयोगी, १४ अयोगी।

प्र०—पांचों इन्द्रियों के विषय कितने हैं ?

उ०—तेवीस २३ ।

प्र०—श्रुतेन्द्रिय के विषय कितने हैं ?

उ०—तीन ।

प्र०—वे कौन २ से हैं ?

उ०—जीवशब्द १, अजीव शब्द २, और मिश्र शब्द ३

प्र०—चक्षुरिन्द्रिय के विषय कितने हैं ?

उ०—पांच ।

प्र०—उनके नाम बताओ ?

उ०—काला, नीला, पीला, लाल, सफेद वर्ण ।

प्र०—घ्राणेन्द्रिय के विषय कितने हैं ?

उ०—दो ।

प्र०—उनके नाम बताओ ?

उ०—सुगन्ध और दुर्गन्ध ।

प्र०—रसेन्द्रिय के विषय कितने हैं ?

उ०—पांच ।

प्र०—वे कौन २ से हैं ?

उ०—तीखा, कड़वा, कसायला, खट्टा, मिट्ठा (रस)

प्र०—स्पर्शेन्द्रिय के विषय कितने हैं ?

उ०—आठ ।

प्र०—उन के भी नाम बताओ ?

उ०—कर्कश, सकोमल, लघु, गुरु, उष्ण, शीत, रुक्ष और स्निग्ध।

प्र०—शरीर में आठ स्पर्श कौन से अंग में विशेष पाए जाते हैं ?

उ०—कर्कश पाद की पार्ष्णि, (एडी) सकोमल तालुओं वा कौन की कोमल, लघु, केश, गुरु, हाड, उष्ण, कालजा, (हृदय) शीत, नाक का अग्र भाग, रुक्ष, जिह्वा, स्निग्ध, आंखें यही आठ स्पर्श शरीर के अवयवों में प्रायः पाए जाते हैं।

प्र०—विकार किसे कहते हैं ?

उ०—जिसके द्वारा आत्मा में विकृति हो जाए, एक प्रकार के विशेष पर्याय (हालत) का नाम विकार है।

प्र०—श्रुतेन्द्रिय के विषय कितने हैं ?

उ०—बारह, १२।

प्र०—वे कौन २ से हैं ?

उ०—जीवशब्द १, अजीव शब्द २, मिश्र शब्द ३, यह तीनों शुभ और तीनों अशुभ इस प्रकार से ६ हुए सो ६ओं पर राग और ६ओं पर द्वेष, एवं सर्व १२ हुए।

प्र०—चक्षुरिन्द्रिय के विकार कितने हैं ?

उ०—साठ ६० ।

प्र०—वे किस प्रकार से गिने जाते हैं ?

उ०—पांचों इन्द्रियों के पांच विषय, ५ सचित्त ५, अचित्त और ५ मिश्र एवं १५ । सो १५ शुभ और १५ अशुभ इस प्रकार ३० हुए सो तीसों पर राग और तीसों पर द्वेष एवं सर्व ६० हुए ।

प्र०—घ्राणेन्द्रिय के विकार कितने हैं ?

उ०—बारह १२ ।

प्र०—वे कौन २ से हैं ?

उ०—घ्राणेन्द्रिय के दो ही विषय सचित्त १, अचित्त २, मिश्र ३ यह ६ हुए सो ६ओं पर राग और ६ओं पर द्वेष एवं १२ ।

प्र०—रसेन्द्रिय के विकार कितने हैं ?

उ०—६० ।

प्र०—वे किस प्रकार से होते हैं ?

उ०—रसेन्द्रिय के पांच ही विषय ५ सचित्त ५ अचित्त ५ मिश्र । यह १५ शुभ और १५ अशुभ सो सर्व तीसों विषयों पर राग द्वेष करने से सर्व साठ ही हो जाते हैं ।

प्र०—स्पर्शेन्द्रिय के विकार कितने हैं ?

उ०—छ्यानवें ९६ ।

प्र०—वे कौन कौन से हैं ?

उ०—स्पर्शेन्द्रिय के आठ ही विषय सचित्त और आठ ही अचित्त और आठ ही मिश्र यह सर्व २४ शुभ २४ अशुभ एवं ४८ ऊपर राग और ४८ ऊपर द्वेष एवं सर्व विकार ९६ हुए ।

प्र०—मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०—सत्य वस्तु को असत्य और असत्य को सत्य जानना वही मिथ्यात्व है ।

प्र०—मिथ्यात्व के कितने भेद हैं ?

उ०—१०, १५, वा २५ हैं जैसे कि निम्न प्रश्नोत्तरों में कथन किये जाते हैं ।

प्र०—१ अभिग्रह मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०—मनमाने अर्थ का ही मानना, जो कुछ अपनी समझ में आजावे उसे सत्य करके मानना अन्य के कहे हुए सत्य को भी नहीं मानना ।

प्र०—२ अनाभिग्रह किसे कहते हैं ?

उ०—हठग्राही तो नहीं है किन्तु सत्य असत्य का निर्णय भी नहीं करना चाहता ।

प्र०–३ अभिनिवेश मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०– जो अपने ग्रहण किये हुए हठ को छोड़ता ही नहीं चाहे कैसा भी विद्वान् क्यों न हो उसको भी मिथ्या दृष्टि जानता है।

प्र०–४ संशयमिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०–षट् द्रव्यों और नवतत्वों में जो सन्देह करता है उसे सांशयिक मिथ्यात्व होता है।

प्र०–५ अनाभोग मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०–जो उपयोग शून्यता से लगता है अर्थात् जो मिथ्यात्व अज्ञानता से लगता है।

प्र०–६ लौकिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०–रागी द्वेषी और देवी आदि को देव मानना १, कामी, क्रोधी को गुरु मानना २, हिंसादि में धर्म मानना ३, होली आदि पर्वों को धार्मिक पर्व मानना ४, यह सर्व लौकिक मिथ्यात्व के भेद हैं यदि इनको धर्म के पर्व वा देवे दिन माने जाएँ तो मिथ्यात्व नहीं हैं।

प्र०–७ लोकोत्तर मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०–देव गुरु, धर्म और पर्व जैसे अठारह दोषों से रहित देव १ गुरु निर्ग्रन्थ २ धर्म दया में ३ अर्हन्त भग-

वंतों के जन्म कल्याणादि तथा पर्यूषण पर्व इत्यादि पर्वों को इसलोक के सुख के लिये मानना।

प्र०—८ कुप्रावचनिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उ०—कुदेव, कुगुरु, कुधर्म, और कुशास्त्र को सत्य करके मानना।

प्र०—९ न्यून मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उ०—जिस प्रकार अर्हत् प्रभुने पदार्थों का स्वरूप वर्णन किया है उससे न्यून प्रतिपादन करना जैसे अंगुष्ठ मात्र जीव है इत्यादि।

प्र०—१० आधिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उ०—वीतराग प्रभु के कथन से आधिक प्रतिपादन करना जैसे एक जीव सर्वव्यापक है ऐसे कहना।

प्र०—११ विपरीत मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उ०—भगवान् के प्रतिपादन किए हुए अर्थों से विपरीत कथन करना जैसे निन्हवों ने किया उसे ही विपरीत मिथ्यात्व कहते हैं।

प्र०—१२ धर्म मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उ०—जो धर्म को अधर्म समझता होवे जैसे अहिंसा सत्य, अदत्त, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, रूप धर्मों को अधर्म मानना।

प्र०—१३ अधर्म मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०—अनार्य कर्मों को धर्म मानना जैसे, जीव हिंसादि कर्मों को धर्म कहना।

प्र०—१४ साधु मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०—जो गुणों से अलंकृत हैं और ठीक साधु वृत्ति को पालने वाले हैं उन्हीं को असाधु मानना।

प्र०—१५ असाधु मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०—जो हिंसक, दुराचारी, व्यभिचारी पुरुष हैं और अठारह पापों के सेवन करने वाले हैं उन्हीं को साधु मानना वही असाधु मिथ्यात्व होता है।

प्र०—१६ जीव मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०—अनंत शक्तिवाले जीव को अजीव मानना तथा जैसे, पर्याय, योग, उपयोगादि धारने वाले एकेन्द्रियादि जीवों को अजीव कहना।

प्र०—१७ अजीव मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०—जड़ वस्तुओं में जीव मानना, जैसे—शुष्क काष्ठ, वस्त्र, निर्जीव पत्थर आदि में जीव संज्ञा धारण करना।

प्र०—१८ मार्ग मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०—सत्य मार्ग जैसे ज्ञान, दर्शन और चारित्र और शुद्ध निर्दोष, तप, दया, दान, संतोष, क्षमा आदि के

मार्ग को बंधन का मार्ग बतलावे और दया दानका निषेध करे।

प्र०—१९ उन्मार्ग किसे कहते हैं ?

उ०—जो सात व्यसन के सेवन का मार्ग है, उसी को मोक्षका मार्ग बतलाना, तथा काम क्रीड़ादि के मार्ग को धर्म पक्ष में स्थापन करना।

प्र०—२० रूपी मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०—रूपवान् पदार्थों को अरूपी मानना। जैसे वायुकाय को शास्त्र में रूपी माना है स्पर्शमान होने से उसी को अरूपी मानना।

प्र०—२१ अरूपी मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०—जो पदार्थ अरूपी हैं, उन को रूपी मानना। जैसे-आत्मा, आकाश, धर्मादि पदार्थों को रूपी कहना

प्र०—२२ अविनय मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०—जिनेश्वर देव के वचनों का न मानना, तथा देव गुरु और धर्म का अविनय करना वही अविनय मिथ्यात्व होता है।

प्र०—२३ आशातना मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ०—गुरुकी ३३ आशातनाएं करना तथा गुरुकी भक्ति आदि का न करना, अपितु गुरु के साथ असभ्य

व्यवहार करना।

०—२४ अक्रिया मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

०—साधु व श्रावक की जो क्रियाएं हैं, उनको न करना अपितु इतना ही नहीं, किन्तु क्रियाओं का निषेध करना।

०—२५ अज्ञान मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

०—जिससे सत्य वस्तु का बोध हो जावे ऐसी पवित्र विद्या का निषेध करना और अज्ञानता को ही श्रेष्ठ मानना, अपितु जो ज्ञान साधन के उपाय हैं। उनका मूलोच्छेदन करना और जो अज्ञान के नाश करने के साधन हैं उनकी रक्षा के उपाय सोचना। अज्ञानता के वश अभिमान, मद, काम, क्रोधादि के वश होकर विद्वानों की हांसी उडानी अपितु इतना ही नहीं, किन्तु सदाचारी पुरुषों को दुःखों से पीड़ित करना।

प्रश्नावली।

१—गुणस्थान किसे कहते हैं ?

२—गुणस्थानों के नाम बताओ ?

३—आठवें गुणस्थान का नाम क्या है ?

४—तेरहवें गुणस्थान का नाम क्या है ?

५—पांचों इन्द्रियों के विषय कितने हैं ?

६—चक्षुरिन्द्रिय के विषय कितने हैं ?

७—विषय किसे कहते हैं ?

८—विकार किसे कहते हैं ?

९—स्पर्शेन्द्रिय के विकार कितने हैं ?

१०—चक्षुरिन्द्रिय के विकार कितने हैं ?

१२—मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

१३—आभिनिवेश मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

१४—जीव मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

१५—न्यून वा अधिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

पांचवां पाठ ।

२५ के थोकड़े में से १४-१५वां बोल

प्र०—तत्त्व किसे कहते हैं ?

उ०—पदार्थ को, जो सत्य वस्तु है ।

प्र०—तत्त्व कितने हैं ?

उ०—नौ—(९) ।

प्र०—उनके नाम बताओ ?

उ०—जीव तत्त्व १, अजीव तत्त्व २, पुण्य तत्त्व ३, पाप तत्त्व ४, आश्रव तत्त्व ५, सम्वर तत्त्व ६, निर्जरा तत्त्व ७, बंध तत्त्व ८, और मोक्ष तत्त्व ९।

प्र०—जीव तत्त्व किसे कहते हैं ?

उ०—जो चेतना लक्षण संयुक्त है। और सुख दुःख को भोगने वाला आठों ही कर्मों का कर्ता और उन्हीं के भोगने वाला शास्वत नित्य असंख्यात् प्रदेशों के धरेन वाला उसे ही जीव तत्त्व कहते हैं।

प्र०—जीव के कितने भेद हैं ?

उ०—दो।

प्र०—वे कौन २ से हैं ?

उ०—सूक्ष्म और बादर (स्थूल)

प्र०—सूक्ष्म जीव किसे कहते हैं ?

उ०—सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से जो सूक्ष्म शरीर धारी जीव हैं, उन्हें ही सूक्ष्म कहते हैं; वे आत्माएं सारे लोक में व्याप्त हैं अपनी आयु के आने पर मृत्यु होते हैं, केवल ज्ञानी उन को देखते हैं।

प्र—बादर जीव किसे कहते हैं ?

उ०—जैसे पांच स्थावर बादर नाम कर्म के उदय से स्थूल

शरीर के धरने वाले हैं, दृष्टिगोचर होते हैं, दुःख वा सुख को अनुभव करते हुए भी देखे जाते हैं। व्यवहार पक्ष में मारे मर जाते हैं, अनुकूल वा प्रतिकूल भी हो जाते हैं अपने कर्मोदय से संसार में भ्रमण करते हैं।

प्र०—एकेन्द्रिय के कितने भेद हैं ?

उ०—चार—४।

प्र०—उनके नाम बताओ ?

उ०—सूक्ष्म १, बादर २, पर्याप्त ३ और अपर्याप्त ४।

प्र०—दो इन्द्रिय वाले जीवों के कितने भेद हैं ?

उ०—दो—२।

प्र०—उनके भी नाम बतलाओ ?

उ०—अपर्याप्त १ और पर्याप्त २।

प्र०—तीन इन्द्रिय वाले जीवों के कितने भेद हैं ?

उ०—दो—२।

प्र०—वे कौन २ से हैं ?

उ०—अपर्याप्त १ और पर्याप्त २।

प्र०—चार इन्द्रिय वाले जीवों के दो भेद कौन २ से हैं ?

उ०—अपर्याप्त १ और पर्याप्त २।

प्र०—पांच इन्द्रियों वाले जीवों के चार भेद कौन २ से हैं ?

उ०—संज्ञि १, असंज्ञि २, अपर्याप्त ३, और पर्याप्त ४।

प्र०—पर्याप्त अपर्याप्त किसे कहते हैं ?

उ०—आहारादि जिस के पूर्ण हो गये हैं; उसे ही पर्याप्त कहते हैं; अर्थात् सम्पूर्ण वस्तु का नाम पर्याप्त है और अपूर्ण का नाम अपर्याप्त है।

प्र०—संज्ञि और असंज्ञि किसे कहते हैं ?

उ०—जो मन वाले जीव हैं, उनको संज्ञि कहते हैं, जिन के मन नहीं है, उनको असंज्ञि कहते हैं पांच स्थावर तीनों विकलेन्द्रिय असांज्ञि मनुष्य और असांज्ञि तिर्यंच यह सब असंज्ञि होते हैं, शेष सब जीव संज्ञि होते हैं। जैसे कि नारकीय, मनुष्य और देवता यह सब संज्ञि (मन वाले) जीव होते हैं।

प्र०—अजीव तत्त्व किसे कहते हैं ?

उ०—जो पदार्थ चेतना से रहित हैं, दुःख सुःख का अनुभव नहीं करते। पर्याप्त, प्राण, योग और कर्मों से रहित हैं, उनको ही अजीव तत्व कहते हैं।

प्र०—अजीव तत्व के कितने भेद हैं ?

उ०—चौदह—१४।

प्र०—उनके नाम बताओ ?

उ०—धर्मास्तिकाय के तीन भेद—स्कन्ध १, देश २,

प्रदेश ३, । अधर्मास्तिकाय के तीन भेद—स्कन्ध १ देश २, प्रदेश ३ आकाशास्तिकाय के तीन भेद—स्कन्ध १, देश २, प्रदेश ३, दशवां काल द्रव्य १० यह सर्व अरूपी हैं । किन्तु पुद्गल के चार भेद हैं जैसे कि स्कन्ध १. देश २, प्रदेश ३, और परमाणु पुद्गल ४ यह सर्व रूपी हैं यह सारे ही एकत्व करने से चौदह भेद होते हैं ।

प्र०—पुण्य तत्त्व किसे कहते हैं ?

उ०—संसार पक्ष में आत्मा को पवित्र करे और जिसके द्वारा प्राणी संसार में अपनी इच्छानुकूल सुख भोगते हैं और यश को प्राप्त होते हैं शुभ भावों से इसका बंध होता है ।

प्र०—पुण्य कितने प्रकार से जीव बांधते हैं ?

उ०—नव (९) प्रकार से ।

प्र०—उन के नाम बताओ ?

उ०—अन्न पुण्य १, पान पुण्य २, लयन पुण्य ३, शयन पुण्य ४, वस्त्र पुण्य ५, मन पुण्य ६, वचन पुण्य ७ काय पुण्य ८, नमस्कार पुण्य ९ ।

प्र०—अन्न पुण्य किसे कहते हैं ?

उ०—अन्न के दान से जीव पुण्य बांधते हैं ।

प्र०—पान पुण्य का क्या अर्थ है ?

उ०—जल दान से पुण्य बांधता है।

प्र०—लयन पुण्य का क्या अर्थ है ?

उ०—स्थान (मकानादि) के दान से जीव पुण्य बांधता है तथा लयन शब्द गिरि घर का वाची भी है सो गुफा के दान से जीव पुण्य बांधता है।

प्र०—शयन पुण्य का क्या अर्थ है ?

उ०—शय्या—फलक (पट्टा) आदि के दान से पुण्य को बांधता है।

प्र०—वस्त्र पुण्य किसे कहते हैं ?

उ०—वस्त्र के दान से जीव पुण्य बांधता है।

प्र०—मन पुण्य का अर्थ क्या है ?

उ०—शुभ मन के धारण करने से जीव पुण्य बांधता है जैसे कि-दान, शील, तप, भावना, दया, आदि के भाव मन में धारण करने से।

प्र०—वचन पुण्य किसे कहते हैं ?

उ०—शुभ वचन के बोलने से जीव पुण्य बांधता है।

प्र०—काय पुण्य का अर्थ क्या है ?

उ०—शरीर से दया पालन करने से और वैयावृत्य (सेवा) करने से तथा विनय करने से जीव पुण्य बांधता है।

प्र०—नमस्कार पुण्य किसे कहते हैं ?

उ०—नमस्कार करने से जीव पुण्य बांधता है।

प्र०—पाप तत्त्व किसे कहते हैं ?

उ०—जिस के द्वारा जीव दुःख भोगते हैं और मन इच्छित वस्तु को प्राप्त नहीं कर सकते सदैव काल जिनको प्रिय वस्तु का वियोग और अप्रिय का संयोग होता रहता है।

प्र०—किन २ कारणों से जीव पाप कर्मों को बांधते हैं ?

उ०—अठारह १८ प्रकार से जीव पाप कर्मों को बांधते हैं।

प्र०—उन पापों के नाम बताओ ?

उ०—प्राणातिपात १, (हिंसा) मृषावाद २, (झूठ) अदत्ता-दान ३, (चोरी) मैथुन ४, (अब्रह्मचर्य) परिग्रह ५, (द्रव्य-धन) क्रोध ६, रोषमान (अहङ्कार) ७, माया ८, (छल) लोभ ९, (लालच) राग १०, (स्नेह) द्वेष ११, (वैर) कल्ह १२, (क्लेश) अभ्याख्यान १३, (झूठा कलङ्क) पैशुन्य १४, (चुगली) परपरिवाद १५, (दूसरों के अव-गुण बोलने) रति अरति १६, (विषयों में राग न मिलने से द्वेष चिंता) माया मृषा (कपट के साथ झूठ बोलना) १७, मिथ्यादर्शन शल्य (खोटे सिद्धान्त की श्रद्धा न रखना) १८।

प्र०—आश्रव तत्व किसे कहते हैं ?

उ०—जिसके द्वारा कर्मरूपी पानी आवे उसे ही आश्रव तत्व कहते हैं जैसे जीवरूपी तालाव कर्मरूपी पानी पांच आश्रव रूप नाला (मिथ्यात्व-अविरत-प्रमाद-कपाय-योग) से भरे उसी का नाम आश्रव तत्त्व है।

प्र०—आश्रव के कितने भेद हैं ?

उ०—वीस २० ।

प्र०—वे कौन २ से हैं उनके नाम बताओ ?

उ०—मिथ्यात्व (असत्य विचार) १, अविरत (प्रत्याख्यान से रहित) २, प्रमाद (निद्रादि प्रमाद) ३, कपाय (क्रोधादि) ४, योग (योगों का प्रवरताना) ५, प्राणातिपात ६ मृषावाद ७ अदत्ता दान ८ मैथुन ९ परिग्रह १० श्रुतेन्द्रिय (कान) ११ चक्षुरिन्द्रिय (आंख) १२ घ्राणेन्द्रिय (नासिका) १३ रसनेन्द्रिय (जिह्वा) १४ स्पर्शेन्द्रिय (त्वग्) १५ इनका वश न करना मन १६ वचन १७ काय १८ इनका वश न करना, भाण्डोपकरण अयत्ना से लेना रखना १९ शुची कुशाग्रमात्र भी अयत्ना से ग्रहनादि करने २० इन कारणों से कर्मरूप पानी आता है इसी को आश्रव कहते हैं।

प्र० सम्वर तत्त्व किसे कहते हैं ?

उ० जिन कारणों से कर्मरूप पानी आना बंद होजाए उसे ही सम्बर तत्त्व कहते हैं अर्थात्—जीव रूपी तालाव कर्मरूप पानी आश्रवरूप नाला सन्बर रूप पाल से बांधे वही तत्त्व होता है।

प० सम्बर तत्त्व के कितने भेद हैं ?

उ० वीस भेद हैं २०

पृ० उनके नाम बताओ ?

उ० सम्यक्त्व सम्बर १ विरतिसम्बर २ अप्रमाद ३ अकषाय ४ अयोग ५ दया ६ सत्य ७ अचौर्य कर्म ८ ब्रह्मचर्य ९ अपरिग्रह १० श्रुतेन्द्रिय ११ चक्षुरिन्द्रिय १२ घ्राणेन्द्रिय १३ रसेन्द्रिय १४, स्पर्शेन्द्रिय १५ इन पांचों इन्द्रियों को वश करना मन वश करना १६, वचन वश करना १७,काय वश करना १८ भाण्डोपकरण यत्न से ग्रहणादि करने १९, शुची कुशाग्रादि पदार्थ यत्न से ग्रहण करने २०।

पृ० निर्जरा तत्त्व किसे कहते हैं ?

उ० जिसके द्वारा पूर्व कर्म क्षय होजावें उसे ही निर्जरा तत्त्व कहते हैं ?

पृ० निर्जरा किस प्रकार से होती है ?

उ० तप कर्म के द्वारा।

प्र० जैन शास्त्रों में तप कर्म कितने प्रकार से वर्णन किया गया है ?

उ० बारह प्रकार से ।

प्र० उनके नाम बताओ ?

उ० अनशन (न खाना) १, ऊनोदरी (कम खाना) २, भिक्षाचरी (साधुवृत्ति के अनुसार मांगना) ३, रसपरित्याग (घृतादि का त्याग) ४ काय क्लेष (आसनादि लगाने) ५, प्रतिसंलीनता (इन्द्रियों को वश करना) ६ प्रायश्चित (दंड लेना) ७, विनय (विनय करना) ८ वैयावृत्य (सेवा करना) ९, स्वाध्याय (पढ़ना पढ़ाना) १०, ध्यान (ध्यान योगाभ्यास करना) ११ कायोत्सर्ग (काय को ध्यान में स्थिर करना) १२ ।

प्र० बंध तत्त्व किसे कहते हैं ?

उ० जीव के साथ आठ कर्मों का पानी और दूध के समान जो एकत्व होना है उसी को बंध तत्व कहते हैं तथा जैसे लोह पिंड में अग्नि समावेश होजाती है उसी प्रकार आत्मा में कर्मों के पुद्गल समावेश होरहे हैं इसी का नाम बंध तत्त्व है ।

० बंध तत्त्व के कितने भेद हैं ?

उ० चार ४।

प्र० उनके नाम बताओ ?

उ० प्रकृति बंध १ स्थिति बंध २ अनुभाग बंध ३ प्रदेश बंध ४।

प्र० प्रकृति बंध किसे कहते हैं ?

उ० जीव के साथ आठ कर्मों की प्रकृतियों का बंध होना जैसे कोई लड्डू कई द्रव्यों के संयोग से बनाया गया है उसका स्वभाव वायु पित्त कफ़ आदि के हरने का है उसी प्रकार आठों कर्मों की प्रकृतियें अपने २ फल देने में समर्थ होती हैं।

प्र० स्थिति बंध किसे कहते हैं ?

उ० आठों कर्मों की प्रकृतियों की स्थिति का बंध करना जैसे कोई लड्डू एक पक्ष तक रह सकता है कोई मास तक इत्यादि प्रकार से स्थिति बंध होता है।

प्र० अनुभाग बंध किसे कहते हैं ?

उ० आठों कर्मों के फलों के रस विशेष जैसे तीव्र मंदादि रस जैसे वही लड्डू तीक्ष्ण है वा कटुक है वा कषा-लयादि है।

प्र० प्रदेश बंध किसे कहते हैं ?

उ० आत्म प्रदेशों के साथ कर्मों के पुद्गलों का बंध करना

वही प्रदेश बन्ध होता है जैसे वही लड्डू थोड़े पुद्-गलों का छोटा होता है और बड़े पुद्गलों का मोटा होता है उसी प्रकार प्रदेश बंध होता है ?

प्र० मोक्ष तत्त्व किसे कहते हैं ?

उ० आत्मा के प्रदेशों से कर्म प्रदेशों का छूटजाना उसी का नाम मोक्षतत्त्व है अर्थात् जो आत्मा आठों कर्मों से बंधा हुआ है जब उन कर्मों से आत्मा मुक्त होता है तब उस पर्याय का नाम मोक्ष कहा जाता है।

प्र० मोक्ष किन २ साधनों से प्राप्त होता है ?

उ० चार कारणों से।

प्र० उनके नाम बताओ ?

उ० सम्यग् दर्शन १ सम्यग् ज्ञान २ सम्यग् चरित्र ३ और तप कर्म ४।

प्र० मोक्ष कब से है ?

उ० अनादि काल से है।

प्र० सिद्ध भगवान् कितने हैं ?

उ० अनंत।

प्र० अजर अमर जीवों की आदि अंत है वा नहीं ?

उ० एक जीव की अपेक्षा से आदि तो है किन्तु अन्त नहीं बहुतों की अपेक्षा से न आदि है न अंत है।

पू० स्त्री पुरुष और नपुंसक इनमें से थोड़े वा बहुत कौन २ से जीव मोक्ष होते हैं ?

उ० सब से थोड़े नपुंसक उस से अधिक स्त्रियें और उन से अधिक पुरुष जीव मोक्ष में जाते हैं ।

पू० चारों गतियों में से कौनसी गति के जीव मोक्ष को प्राप्त कर सक्ते हैं ?

उ० मनुष्य गति के जीव ही मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं और नहीं ।

पू० पांचों इन्द्रियों में से कौन २ सी इन्द्रियों वाले जीव मोक्ष होते हैं ?

उ० पांच इन्द्रियों वाले जीव मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, जिन के पांच इन्द्रियें सम्पूर्ण न हों वे मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते, जैसे चारों इन्द्रियों वाले जीव ।

पू० त्रस और स्थावर काय में से कौनसी काय वाले जीव मोक्ष प्राप्त होते हैं ।

उ० त्रसकाय वाले जीव मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं ।

पू० मोक्ष भव्य जीव को है वा अभव्य जीव को है ?

उ० भव्य जीव को है, अभव्य को नहीं ।

पू० भव्य किसे कहते हैं ?

उ० जो मोक्ष के योग्य हो ।

पृ० अभव्य किसे कहते हैं ?

उ० जो मोक्ष के योग्य न होवे।

पृ० संज्ञि को मोक्ष है वा असंज्ञि को मोक्ष है ?

उ० संज्ञि को (मन वाले जीव) मोक्ष है, असंज्ञि को मोक्ष नहीं है।

पृ० क्या आहार करने वाले जीव मोक्ष जाते हैं वा आहार को त्याग के मोक्ष होते हैं ?

उ० अनाहारी जीव मोक्ष होता है, आहार करने वाला नहीं अर्थात् आहार त्यागने से मोक्ष होता है।

प्र० पांचों ज्ञान में से कौन से ज्ञान को मोक्ष है ?

उ० केवल ज्ञान को मोक्ष है, दूसरे चारों ज्ञानों वाला मोक्ष नहीं जा सकता ?

पृ० चारों दर्शनों में से कौन से दर्शन को मोक्ष है ?

उ० केवल दर्शन को मोक्ष है, अन्य को नहीं।

पृ० सिद्धों में अन्तर है वा नहीं ?

उ० सिद्धों में अन्तर नहीं है, जहां पर एक सिद्ध है, वहां ही अनन्त हैं, जैसे दीपक की शिखाओं का प्रकाश परस्पर मिला हुआ होता है, ठीक उसी प्रकार अनन्त आत्मा अन्तर से रहित हैं।

१० संसारी जीव अधिक हैं वा सिद्ध जीव अधिक हैं।

उ०—संसारी जीवों से सिद्ध जीव अनन्तवें भाग प्रमाण हैं अर्थात् संसारी जीवों से सिद्ध जीव बहुत ही थोड़े हैं।

प्र०—आत्मा किसे कहते हैं ?

उ०—जो अपने पर्यायों को निरन्तर प्राप्त होवे उसे ही आत्मा कहते हैं।

प्र०—आत्मा पर्यायों (हालतों) की अपेक्षा से कितने प्रकार के माने जाते हैं ?

उ०—आठ प्रकार से।

प्र०—उन के नाम बताओ ?

उ०—१ द्रव्य आत्मा, २ कषाय आत्मा ३ योग आत्मा, ४ उपयोग आत्मा, ५ ज्ञान आत्मा, ६ दर्शन आत्मा ७ चरित्र आत्मा, ८ और बल वीर्य आत्मा।

प्र०—आत्मा नित्य है वा अनित्य है ?

उ०—द्रव्य से आत्मा नित्य है, पर्यायों से आत्मा अनित्य है, जैसे आज दिन किसी का जन्म हुआ तो जहां से वह मर कर आया है, वहां तो रुदन हो रहा है और जहां जन्म लिया वहां पर मंगलाचरण किया जा रहा है, किन्तु आत्मा द्रव्य उत्पत्ति आदि से रहित है और पर्याय से अनित्य है॥

प्रश्नावली।

१—सूक्ष्म जीव किसे कहते हैं ?

२—बादर जीव किसे कहते हैं ?

३—पर्याप्त अपर्याप्त का क्या अर्थ है ?

४—पुण्य तत्त्व किसे कहते हैं ?

५—पुण्य के कारण बताओ ?

६—दशवें पाप का क्या नाम है ?

७—अठारह पापों के नाम बताओ—

८—आश्रव के नाम बताओ ?

९—सम्वर तत्त्व के अर्थ बतलाओ ?

१०—निर्जरा तत्त्व के कितने भेद हैं ?

११—वैयावृत्य का क्या अर्थ है ?

१२—कायोत्सर्ग का क्या अर्थ है ?

१३—बन्ध तत्त्व के कितने भेद हैं ?

१४—बन्ध तत्त्व के भेदों के नाम बताओ ?

१५—मोक्ष तत्त्व किसे कहते हैं ?

१६—आत्मा शब्द का क्या अर्थ है ?

१७—आठों आत्माओं के नाम कहो ?

छठा पाठ।

गृहस्थ के गुण विषय।
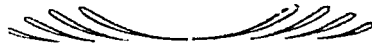
चारों आश्रमों का कारण भूत एक गृहस्थाश्रम है, गृहस्थाश्रम की शुद्धि के होने पर ही शेष आश्रम शुद्ध हो सकते हैं। गृहस्थाश्रम-रूपी गाड़ी के चलाने वाले स्त्री और पुरुष यह दोनों वृषभ (बैल) हैं, जब बैल सुयोग्य होते हैं, तब पथिक इच्छानुकूल मार्ग पर शीघ्र पहुँच जाता है तथा गाड़ी में बैठने वाले आनन्द पूर्वक अपने नियत स्थान पर पहुँच कर सुख का अनुभव करते हैं। अतएव सिद्ध हुआ कि गृहस्थाश्रम के बसने वाले स्त्री और पुरुष सुयोग्य होने चाहिएं। क्योंकि शिक्षित और आशिक्षित का अन्तर अवश्यमेव होता है, जैसे काठ काठ का अन्तर होता है; चन्दन भी काठ है, किकर भी काठ। परन्तु उन्हों के गुण का अन्तर अवश्य है, उसी प्रकार स्त्री वा पुरुष का अन्तर है। एक पुरुष वा स्त्री गुणज्ञ, परोपकारी, सत्यवादी, ब्रह्मचारी, न्याय करने वाले होते हैं। एक अन्यायी, व्यभिचारी होते हैं तो उन्हों का संसार में प्रतिष्ठा आदि गुणों में अवश्यमेव अन्तर पड़ जाता है, संसार में अल्प

मूल्य वाला होता है, यदि उसको भी शिक्षाओं द्वारा ठीक किया जाए तो वह भी बहु मूल्य हो जाता है।

जैसे एक तो वह लोहा है जो अभी आकर (क़ान= खानि) से निकला है और वह भी लोहा ही है, जिसको अग्नि में ढाल कर शस्त्र बनाये गए हैं और एक वह शस्त्र भी हैं, जो आंख आदि सकोमल स्थानों के ठीक करने में आते हैं, अब देखिए उन दोनों में कितना भारी मूल्य का अन्तर पड़ा हुआ है। इसी प्रकार शिक्षित और अशिक्षित पुरुषों वा स्त्रियों में अन्तर होता है। सो जब स्त्री वा पुरुष गृहस्थाश्रम में शिक्षित होकर प्रविष्ट होते हैं तब वह गृह-स्थाश्रम के भार को निवाहते हुए साथ ही धर्मकार्य्यों में भी भाग लेने में अग्रणीय हो जाते हैं इसी वास्ते गृहस्थाश्रम वाला अपने नियमों को पालन करता हुआ शीघ्र ही धर्म के पथ पर आ सकता है। बत्तीस गुण गृहस्थाश्रमियों के लिए बड़े ही उपयोगी हैं, जो उनको अवश्यमेव धारण करने चाहिएं।

पाठकों के स्मृति रखने के लिए बत्तीस गुणों के नाम दिये जाते हैं। जैसे कि—१ आचार शुद्ध, २ कुल निष्कलङ्क, ३ रूपवान् (विनयादि गुणों से युक्त) ४ सत्यवादी, ५ विद्यावाला, ६ प्रमाण पूर्वक अल्प आहार

करने वाला, ७ यथोचित कार्य करने वाला, ८ तेजस्वी, ९ प्रमोद युक्त, १० वचन दृढ़ वाला, ११ दयावान्, १२ नम्र वृत्तिवाला, १३ धर्म नीति का ज्ञाता, १४ उत्तम गुणों के धारने वाला, १५ ज्ञानवान्, शुभ ध्यान करने वाला, १७ लज्जा वाला, १८ गुणों में गम्भीर, १९ शूरवीर, २० माता पिता की आज्ञा मानने वाला, २१ चतुर, २२ दान में उदार चित, २३ कायोत्सर्ग (योगाभ्यास) करने वाला, २४ भाग्यवान्, २५ सुज्ञात, २६ परोपकारी, २७ देव गुरु की भक्ति करने वाला, २८ माता पिता के ऋण को पूर्ण करने वाला, २९ बुद्धिवान्, ३० अहङ्कार से रहित ३१ अपने लाभ और व्यय (खरच) का विचार करने वाला, ३२ न्याय से कीर्त्ति उत्पन्न करने वाला। इन बत्तीस गुणों वाला गृहस्थी गृहस्थाश्रम योग्य होने से फिर धर्म के भी योग्य होजाता है।

इसलिए सर्व प्राणियों को इन गुणों के धारण करने की आवश्यकता है, इससे ही परोपकार की श्रेणी में जीव आरूढ़ हो जाता है और सदैव काल इस विचार को भी अपने से पृथक् कर देना चाहिए जिस विचार से प्राणी अपने गुणों का नाश कर बैठता है इस लोक में निन्दा परलोक में दुःख भोगता है वह क्या है "ईर्ष्या" दूसरों

की ईर्ष्या करने से अपयश गुणों का नाश इत्यादि अव-गुणों की प्राप्ति होती है इसलिए किसी से भी ईर्ष्या मत करो निन्दा मत करो किसी का भी तिरस्कार मत करो अपितु होसके तो औरों के गुणानुवाद करो उन के सत्य और शील की सुन्दरता दिखलाओ जब कि तुम उन के गुण कथन करोगे तब वह भी तुम्हारे साथ सभ्य वर्ताव करेंगे जिससे प्रेम की परस्पर अत्यन्त वृद्धि होगी।

सातवां पाठ।

चार कषायों के विषय।

पाठको ! जैनसूत्रों में क्रोध, मान, माया और लोभ को चार कषाय कहते हैं यह चारों ही पदार्थ गुणों के नाश करने वाले हैं विपत्ति देने वाले हैं इसलिए इन को कदापि भी न करना चाहिए। देखो यावन्मात्र विष हैं उन सब से बढकर क्रोधरूपी विष है इस से जीव अनेक जन्मों तक मरता रहता है तथा क्रोध का यह भी स्वभाव है कि प तो जलना ही है किन्तु साथ औरों को भी भस्म कर

डालता है जो प्रिय से प्रिय भी वस्तु हैं उस का भी नाश कर बैठता है देखो उस दिन चन्द्रदत्त ने क्रोध के वश होकर कूप में छलांग मारी फिर वह पकड़ा गया उस की कैसी दुर्गति हुई इसलिए विष के उतारने के लिए एक शान्ति ही परम मन्त्र है, जिसके पढ़ने से कोप उतर जाता है।

क्योंकि जहां पर शान्ति का राज्य है वहां पर क्रोध की आग अपने आप बुझ (शान्त) जाती है, अपितु क्रोध करने वाले को लज्जित होना पड़ता है। जैसेकि—किसी नगर के बाहिर एक भिक्षु ठहरा हुआ था, उसकी शान्ति की महिमा नगर में बहुत ही फैल गई सैंकड़ों नर नारियों के समूह उसके दर्शनों को आते थे और उन से उत्तम २ शिक्षा प्राप्त करते थे, फिर उनका यशोगान करते हुए अपने २ घरों में चले जाते थे। एक दिन की वार्त्ता है कि किसी पुरुष ने विचार किया कि इस महात्मा की शान्ति की सीमा कहां तक है, इसलिए इसकी परीक्षा करनी चाहिए, तब उस पुरुष ने उस भिक्षु के पास आकर गालियें और दुर्वाक्य बोलने आरम्भ कर दिए किन्तु महात्मा ने उनका कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दिया तब वह पुरुष अपने आप चुप होगया, जब वह चुप होगया। तब

उस साधु ने उसे कहा कि—हे भद्र ! तुम ने अपनी इच्छा को तो पूरा कर लिया है इसलिए अब आप हमारे उपदेश को भी सुन लीजिए।

तब उस पुरुष ने कहा कि—हे भगवन् ! आप कृपा करें मैं आप के सत्योपदेश को अवश्यमेव सुनूंगा, फिर वह महात्मा कहने लगे कि—हे भद्र ! किसी नगर में दो मित्र बसते थे, उन्हों का परस्पर अत्यन्त स्नेह था। एक दूसरे के वियोग में अत्यन्त व्याकुल होजाता था, एक दिन उन दोनों में से एक मित्र किसी विशेष कार्य के लिए अमुक नगर में चला गया तब उसने अपना कार्य करने के पश्चात् अपने प्रिय मित्र के लिए एक पारितोषिक-रूप वस्तु को ले लिया और उसे लेकर अपने नगर में पहुंच कर अपने प्रिय मित्र को मिला फिर उसे कहा कि—हे प्रिय ! मैं तेरे लिए यह वस्तु लाया हूं, आप कृपा करके इसे ले लें और मुझे कृतार्थ करें।

तब मित्र ने उत्तर में कहा कि—हे प्रिय ! मैं आप का उपकार मानता हूं परन्तु मुझे इस वस्तु की इच्छा नहीं है, इसलिए मैं इसको नहीं लेता उसके मित्र ने जब दो बार तीन बार उस से लेने के लिए कहा जब उसने ना ही माना (महात्मा जी कहते हैं) अब बतलाओ वह वस्तु

किस की रही तब उस पुरुष ने कहा कि—हे महात्मन् ! वह वस्तु उसी की रही जो उसे लेकर आया था ।

तब भिक्षु ने फिर कहा कि—हे भद्र ! इसी प्रकार तू हमारा मित्र है तू हमारे लिए गालिएँ और दुर्वाक्य लेकर आया है, परन्तु हम को इनकी इच्छा नहीं है, अब बत-लाओ यह गालियें किस की रहीं अतएव सिद्ध हुआ कि जिस वस्तु को तुम लेकर आए हो । वह तुम्हारे ही पास रहे हम को इनकी इच्छा ही नहीं है, इतने वाक्य सुनकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ और महात्मा से क्षमा की प्रार्थना करने लगा और उनके सत्योपदेश से अपनी आत्मा को पवित्र किया ।

इसलिए क्रोध को शान्ति द्वारा मारना चाहिए फिर अहङ्कार के समान कोई भी वैरी नहीं है इसको सकोमल भावों से दूर करना चाहिए ।

मानी पुरुष को कोई भी सुदृष्टि से नहीं देखता है ।

अहङ्कार की विद्या भी सफल नहीं होती है, गर्व करने वाला बड़ों की विनय का नाश कर बैठता है और उसका ज्ञान लोगों के उपकार के लिए तो नहीं होता किन्तु अहङ्कार के लिए ही होता है । इसलिए हे पाठको ! तुम किसी भी वस्तु का मान मत करो, अपितु सब के

साथ प्रेम और प्यार से वर्ताव करो। जो मान करते हैं वह सुखी नहीं देखे जाते हैं। देखो कि—जो वृक्ष फलों से युक्त होता है वह झुक जाता है उसी तरह विद्या वाला पुरुष भी नम्र होजाता है। राजा रावण ने अहङ्कार से अपने कुल का नाश कर लिया, अतएव सिद्ध हुआ कि—अहङ्कार को छोड़ कर गुण ग्रहण करने चाहिएं और जो अहं भाव को छोड़ देता है लोग उसकी रक्षा करते हैं, जो नहीं छोड़ता है वह दुःख पाता है। जैसे कि तुम बकरी को देखो जो "मैं मैं" करती है, वह कैसा दुःख पाती है और एक पक्षी "मैंना" नाम वाला होता है उस की लोग रक्षा करते हैं क्योंकि उसका शब्द है कि—मैं नहीं अर्थात् मैं कुछ नहीं हूं तभी उसकी रक्षा होती है। बकरी मैं मैं करती है, उसे ही दुःख भोगना पड़ता है। इसलिए गर्व मत करो, फिर माया (कपट) को छोड़ दो, कपट करने वालों का हृदय शुद्ध नहीं होता है और अपनी परम मित्रता का भी नाश कर बैठते हैं। क्योंकि छल करने वाले के साथ कोई भी मित्रता नहीं करता, यदि किसी की मित्रता होवे तो वह भी टूट जाती है।

कपटी पुरुष संसार में शोभा नहीं पाते हैं अपितु सर्व से डरते रहते हैं क्योंकि जिस ने छल किया होता है

उसका हृदय कांपता रहता है और उसके मुख से वार्ता भी पूरी नहीं निकलती है किन्तु उसका आत्मा हरएक के छिद्र देखता रहता है इसलिए ऋजु (सरल) भावों से छल को जीतना चाहिए किसी के साथ भी कपट से वर्ताव मत करो धोखा न दो कपट झूठ की माता है इस वास्ते कपट को छोड़कर लोभ भी मत किया करो। सब दुःखों की खानि एक लोभ है, सब गुणों के भस्म करने के लिए लोभ एक महा अग्नि है देखो जिसने जिस बात का लोभ किया उसी ने दुःख पाया जिस ने सन्तोष किया उसी ने सुख पालिया इसलिए लोभ छोड़ के सन्तोष करना चाहिए सन्तोष से लक्ष्मी की वृद्धि होती है सन्तोष से सभ्यता बढ़ती है अपितु लोभ से मरण पर्यन्त दुःख आपड़ते हैं इस वास्ते लालच को त्याग कर सन्तोप रूपी धन अपने पास रखना चाहिए और नीचे लिखे हुए प्रश्नों की स्मृति कर लेनी चाहिए जैसेकि—

प्र०—संसार में सब से बढकर विष (जहर) कौनसी है ?

उ०—क्रोध।

प्र०—अमृत वस्तु क्या है ?

उ०—दया, परोपकार।

प्र०—वैरी कौन है ?

उ०—अहङ्कार, गर्व ।

प्र०—हित करने वाली वस्तु कौनसी है ?

उ०—अपने काम में प्रमाद न (आलस्य) करना ।

प्र०—भय किस को सदा रहता है ?

उ०—छल कपट करने वाले को ।

प्र०—जगत् में शरण किस की है ?

उ०—सत्य की, सत्यवादी को किसी का भी भय नहीं है ।

प्र०—दुःखी कौन है ?

उ०—लोभी (लालच करने वाला) ।

प्र०—सुखी कौन है ?

उ०—संतोषी-संतोष करने वाला ।

प्र०—किस की बुद्धि अधिक होती है ?

उ०—जो क्रोध नहीं करता ।

प्र०—अपयश किस का होजाता है ?

उ०—जो क्रोधी और व्यभिचारी है ।

प्र०—लक्ष्मी किस के पास नहीं रह सक्ती ?

उ०—जिसका चित्त सदैव अशान्त और बिखरा हुआ रहता है ।

प्र०—लक्ष्मी किस के पास रहती है ?

उ०—जिस का चित्त शान्त और स्थिर रहता है जो कष्टों के आने पर भी धैर्य को नहीं छोड़ता जैसे आनन्द और

कामदेवादि श्रावक हुए हैं ।

आठवां पाठ ।

दया विषय ।

पूर्व काल में इसी भारत वर्ष में एक चम्पा नाम वाली नगरी बसती थी, उस में अनेक धनी लोगों का निवास था और उस नगरी में एक धनवाला ब्राह्मणों का भी कुल था ।

अपितु एक ब्राह्मण के तीन पुत्र थे, और उनके तीन वधुएँ भी आई हुई थीं, एक समय उन तीनों भाईयों ने अपना रसोई घर (महानसशाला) तीनों वधुओं को संभाल दिया, और उनकी रसोई बनाने की वारी बांधदी एक दिन सब से बड़ी बहू की वारी आगई उसका नाम नाग श्री था—उसने जब रसोई का काम करना आरंभ कर दिया तब उसने शाक के पकाने के लिए कटुक तूम्बा रांध लिया उसमें अनेक प्रकार के व्यञ्जन (मसाले) भी डाल दिये घृतादि से भी संस्कृत कर दिया जब उसने अपनी

रसेन्द्रिय पर स्वाद के लिए रखा तो वह हलाहल विष के समान था, फिर उसने उसको विष समझ कर उसे अलग रख दिया और मन में विचार किया मेरी इस भूल को कोई जान न ले इस लिए मैं इसको किसी एकान्त स्थान में गिरा दूंगी फिर उसने एक और शाक तय्यार करलिया।

उसी नगरी में धर्म घोष स्थविर के शिष्य धर्म रुचि अनगार विराजमान थे वह मास २ के पीछे पारणा करते थे एक दिन की वार्ता है कि उस मुनि का मास तप पूर्ण हो गया फिर वह अपने गुरु की आज्ञा लेकर पारणे के लिए चम्पा नगरी के घरों में भिक्षा के लिए फिरने लगे—भ्रमण करते हुए वह उसी नागश्री के घर में भिक्षा के लिए आगए तब नागश्री ने मन में विचार किया कि—मैं वह विष रूप तूम्बों का शाक इसी मुनि को देदूं। जिससे मेरी बात प्रगट भी न होगी और मेरा काम भी सिद्ध होजाएगा, तब उसने उस मुनि के पात्र में वह सारा ही तूम्बे का शाक डाल दिया मुनि उस शाक को लेकर अपने गुरु के पास आगए और उस आहार को जब गुरु महाराज को दिखलाया तब गुरु महाराज ने बतलाया कि—हे शिष्य ! यह तो विष है यदि तू आहार करेगा, तो तू अकाल में ही मृत्यु प्राप्त कर लेगा, इस लिए

तुम नगरी के बाहिर जाकर किसी एकान्त स्थान में इसे गिरा आओ जिससे किसी भी जीव की हानि न होवे।

तब शिष्य ने गुरु की आज्ञा लेकर नगरी के बाहिर किसी एकान्त स्थान में जाकर जब उस शाक का एक बिंदु भूमि पर गिराया तब उसकी गंध से सैकड़ों कीड़िएं अपने भवनों से निकल कर वहां पर आगईं और फिर मरने लगीं तब मुनि ने विचार किया कि जब एक बिंदु से इतना अनर्थ होगया है यदि मैंने सारा ही इसे यहां पर गिरा दिया तो न जाने कैसा अनर्थ होजाएगा, तब उस महामुनि ने दया के वशीभूत होकर उस कटुक तूम्बे का आहार कर लिया फिर जब शरीर में वेदना होने लगी तो उसने अपने व्रतों की आलोचना करके अनशन व्रत धारण कर लिया और उसी समय काल करके स्वार्थ-सिद्ध नाम वाले २६ वें लोक में जाकर उत्पन्न होगया वहां से भी एक भव लेकर मोक्ष पधारा जैसे धर्मरुचि मुनि ने कीड़ियों की करुणा के वास्ते अपने प्राण भी न्योच्छावर कर दिये इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी को चाहिये कि दया के वास्ते जितने कष्ट उत्पन्न होजाएं उतने ही अपने शरीर पर सहन करने चाहिएं क्योंकि धर्म का मूल दया ही है इसी दया से प्राणी अपना उद्धार कर सकते हैं।

नवां पाठ।

रात्रि भोजन त्याग।

प्रातःकाल का समय है जैन उपाश्रय में मुनि महाराज जी बैठे हुए बहुत से भाईयों को जोकि सामायिक आदि नित्य कर्म कर चुके हुए हैं, उनको धर्मोपदेश करते हुए शिक्षा देते हैं कि, हे भाईयो ! रात्रि भोजन श्रावक को कभी भी नहीं करना चाहिये। इसे शास्त्रों में वर्जित किया गया है। उदाहरण रूप में आप से एक कथा कहता हूं उसे सुनो !

उपा नामा नगरी में हंस और कपूर नाम वाले दो भाई रहते थे। उनका एक मित्र जिसका नाम नन्ददेव ा और जाति का वह ब्राह्मण था, रहता था। उनका रस्पर बड़ा प्रेम था। एक समय जब कि श्राद्धों के देवस आये हुए थे और हंस कपूर के गृह में बड़े च्छे २ पकवान बने हुए थे, उस समय हंस ने कपूर से हा कि, भाई ! आज हम ने श्रेष्ठ पकवान बनाये हैं क्या ी उत्तम हो यदि तुम आज नन्ददेव को भी बुला लाओ ाह भी आज भोजन कर लेवे। कपूर स्वयं जाकर नन्ददेव ो बुला लाया. नन्ददेव ने आकर हंस कर कहा, प्रिय

हंस ! मुझे इस समय भोजन की इच्छा तो नहीं किन्तु मैं तुम्हारा वचन भी नहीं मोड़ सकता इसलिये मुझे आज्ञा दो कि मैं भोजन अपने घर ले जाऊं तदुपरांत वह भोजन को घर में ही ले गया उसकी स्त्री ने उसे अलमारी में रख दिया और स्वयं काम काज में लग गई। कुछ समय के पीछे भोजन की सुगन्ध और घृत की चिकनाहट से उस भोजन में कीड़ियां चढ गईं। रात्रि के समय जब नन्ददेव ब्राह्मण घर में आये तो उनकी स्त्री ने वही भोजन उनके आगे रख दिया। रात्रि का समय था कुछ विशेष दृष्टिगोचर न होता था। नन्ददेव ब्राह्मण क्षुधा से आकुल व्याकुल तो थे ही झट खाने लग पड़े। कीड़ियां जो भोजन पर लिपटी हुई थीं सब साथ ही भक्षण कर गये। जब भोजन समाप्त हो गया तो हाथ मुंह धोकर लेट गये कुछ ही समय के पीछे पेट में दर्द होने लगी बढती २ इतनी क्लेशदायक होगई कि बेचारे बेहोश होगये। अब लगा वैद्य पर वैद्य आने जांच करने पर पता लगा कि भोजन में कीड़ियां लिपटी हुई थीं और वह सब पेट में चली गईं योग्य औषधी देकर वमन कराई गई और रोग को शांति हुई। इसलिये हे भाइयो ! रात्रि में भोजन कदापि नहीं करना चाहिए।

भजन ।

चल जैन धर्म अनुसार रे मन मूढ नरा—टेक

जैन धर्म की यही रीति, सब जीवन से करनी प्रीति ।

खिमना वारम्वार, रे मन० ॥ १ ॥

छै काया की रक्षा करनी, साधु संतके लग जा चरनी ।

दया धर्म दिल धार, रे मन० ॥ २ ॥

एह दुनिया सब धुंद पसारा, मूरख क्यों तैंने पैर पसारा ।

होवेगा बहुत ख्वार, रे मन० ॥ ३ ॥

जगत सराय मुसाफर खाना, इक आय इकना चल जाना ।

मन में सोच विचार, रे मन० ॥ ४ ॥

मात पिता सुत सज्जन भाई, अंत समे तेरा कोई न सहाई ।

रोवेगा जारो जार, रे मन० ॥ ५ ॥

अब करले कुछ नेक कमाई, पुण्य उदय नर देही पाई ।

जनमना वारम्वार रे मन० ॥ ६ ॥

दान शील तप भावना भावो, काम क्रोध मद लोभ मिटावो ।

अष्ट कर्म को मार रे मन० ॥ ७ ॥

म प्रभु का हृदय धरना, जो चाहे भवसागर तरना ।

जीऊंना है दिन चार रे मन० ॥ ८ ॥

संग तेरे इक धर्म ही जावे, तन धन जोवन काम न आवे ।

कीजो पर उपकार रे मन० ॥ ९ ॥

रायकोट में छन्द बनाया, सब भाईयों के बीच सुनाया ।

कहता है दास पुकार, रे मन मूढ नरा ॥ १० ॥

सूचना

इस शिक्षावली में लिखी गई शिक्षाएं अध्यापकगण विवेक पूर्वक बच्चों को बड़े प्रेम से समझावें क्योंकि उनका हृदय अति कोमल होता है ।

जैनधर्म शिक्षावली के सारे भाग मिलने का पता:—

ला० मिट्ठीमल बाबूराम जी जैन

चौड़ा बाज़ार, लुधियाना।

श्रीवीतरागायनमः ।

जैनधर्म शिक्षावली

चतुर्थ भाग ।

जैनमुनि उपाध्याय आत्माराम जी

तृतीय वार १०००]

[मूल्य ॥)

ीय ला० बात्रगम जी सुपुत्र ला० मिड्डीमल जी लुध्याना ।

चित्र परिचय ।

यह सौम्य । कांति युक्त चित्र किस महानुभाव का है ! इस की मनके हरण करने हारी अलौकिक छवि किस भव्य आत्मा की है ?

इस चित्रकी मुखाकृति पर अति सौंदर्य के धारण करने वाली हसन रूप क्रिया किस प्रकार मनको लुभा रही है ! प्रिय सुज्ञ पुरुषो ! यह चित्र श्रीमान् श्वेताम्बर स्थानक वासी जैन लाला मिड्डी मल लुधियाना निवासी के सुयोग्य पुत्र श्रीमान् लाला बावूलाल जैनकी है आपका जन्म विक्रम संवत् १९४२ मृगशीर्ष शुक्ला ६ का श्रीमती देवी सरधी जी की कुक्षि से हुआ था आपकी बाल्यावस्था अत्यन्त सुखपूर्वक व्यतीत हुई फिर आपने अपनी योग्यता पूर्वक विद्याध्ययन किया आप बहुत ही शीघ्र अपने व्यापार कर्म में प्रवीण होगये योग्यता पूर्वक व्यापार करने लगे साथ ही जैन मुनियों की संगति के कारण से आप धर्म कार्यों में बहुत भाग लेने लगे इतना ही नहीं किन्तु दानियों की मालाओं में आप का नाम अंकित हो गया आप अनाथों की वा विधवाओं की अन्तःकरण से सहायता करते थे धार्मिक कार्यों में आप ने बहुत ही द्रव्य व्यय किया था तथा जो आज दिन लुधियाना शहर में जैन कन्या पाठशाला बड़े अच्छे रूप में चल रही है इसकी स्थापना में मुख्य कारण आप ही थे आपने इस पाठशाला की रक्षार्थ बहुत सा

द्रव्य व्यय किया था जो जैन गृहस्थ आप से किसी प्रकार की प्रार्थना करता था आप उसको निराश नहीं करते थे इसी दान के माहात्म्य से आप का शुभ नाम दूर देशान्तर में विस्तृत हो गया था, आप विद्या प्रेमी भी अतीव थे जो कोई विद्या के लिये आप से चंदा मांगता था वह अपनी इच्छानुकूल द्रव्य पा लेता था श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी ऑल इंडिया जैन कान्फरन्स और पंजाव जैन कान्फरन्स में आप वहुत सा भाग लेते थे दोनों कान्फ़रन्सों की उन्नति के लिये आप ने वहुत सा द्रव्य व्यय किया यत्र तत्र धार्मिक संस्थाओं का नाम आप सुनते थे आप उसको रक्षा के लिये यथा शक्ति द्रव्य की सहायता उस संस्था को पहुँचाते थे किं वहुना जैन धर्म से आपको असीम प्रेम था जैन साधुओं की भक्ति आप के हृदय में वड़ी सुदृढ़ता के साथ अंकित होरही थी । आप उनकी यथोचित सेवा भक्ति करके लाभ उठाते थे। विद्यार्थी साधुओं के लिये भी आप की ओर से सुचारु प्रवन्ध शीघ्र ही होजाता था। हा शोक! काल की कैसी विचित्र घटना है एक परमोत्साही जैन युवक को समय भली प्रकार से न देख सका यही कारण था कि इस नश्वर संसार से आप संवत् १९७९ आषाढ कृष्णा ११ अपने वृद्ध पिता लाला मिड्डीमल को और अपनी भावी होनहार सन्तान तथा अपने सर्व परिवार को वियोग रूपी सागर में छोड़ कर स्वर्गवासी वन गये परन्तु काल करते समय भी आपने अपनी सदैव यशोगान करने वाली दान शैली

को विस्मृत नहीं होने दिया था अन्य दान करते समय आपने धर्म कार्य में व्यय करने के लिये भी ५००) रुपये दान कर दिये सत्य है सत्पुरुष नाना प्रकार की विपत्तियों के आने पर भी अपनी प्रकृति से यत् किंचन्मात्र भी विचलित नहीं होने पाते हम आप के फले फूले परिवार से सहानुभूति करते हैं और श्री जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करते हैं कि आपकी आत्मा को शान्ति मिले। इसमें कोई भी आश्चर्य नहीं कि पुण्यात्माओं की प्रायः संतति भी पुण्य रूप ही होती है। आप का अनुकरण करने वाले आप के सुपुत्र लाला गुजरमल लाला सोहनलाल व लाला ब्रजलाल भी धर्म कार्यों में बहुत सा भाग लेते रहते हैं आप की वृद्धा भगिनी श्रीमती धन देवी (धन्नो) और आप की धर्म पत्नी श्रीमती द्वारिका देवी धर्म कार्यों में उत्साह पूर्वक काम कर रही हैं आप इस विनश्वर संसार में अपनी तीन कन्यायें और तीनों ही सुपुत्रों को छोड़ गये हैं हम श्री जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करते हैं कि जिस प्रकार धर्म कार्यों में आप का अन्तःकरण लगा रहता था और जैन जाति के उन्नत करने के लिये आप अनेक प्रकार के मार्गों का अन्वेषण किया करते थे उसी प्रकार आपका पवित्र अनुकरण आप का सकल परिवार भी किये जारहा है इसी प्रकार आगामी काल में भी करता रहे यही हमारी अंतरंग भावना है यह "जैन शिक्षावली" नामक ग्रन्थ के पाचों ही भाग आपके सुपुत्रों ने आप का नाम चिरस्थायी करने के लिये और आप की स्मृति के

लिये आप के दान किये हुये द्रव्य से मुद्रित किये हैं क्योंकि यह ग्रन्थ कई वार मुद्रित हो भी चुका है परन्तु पाठशालाओं में इस ग्रन्थ को प्रायः प्रत्येक श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन ने इस ग्रन्थ को स्थान दिया है अतः इसकी अतीव मांगें आने पर आप के पूज्य पिताजी और सुपुत्रों ने आपकी स्मृति के लिये मुद्रित करवा के श्री संघ पर परम उपकार किया है जिससे वे धन्यवाद के पात्र हैं। अतएव हम उन सब को सहर्ष धन्यवाद देते हुये श्री संघ से आवश्यकीय प्रार्थना किये विना नहीं रह सकते कि धर्म कार्यों में आप लोग भी श्रीमान् लाला वावूलाल जैन का अनुकरण करके जैन धर्म को उन्नति के शिखर पर पहुँचाते हुये अक्षय सुख की प्राप्ति करें और साथ ही श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के प्रतिपादन किये हुये श्री अहिंसा धर्म के प्रचार से जनता में शान्ति स्थापन करें।

निवेदक
जैन कन्या पाठशाला के सभासद्

श्रीवर्द्धमानायनमः ।

जैन धर्म शिक्षावली

* चतुर्थ भाग *

लेखक

उपाध्याय जैनमुनि श्री आत्मारामजी

महाराज (पंजाबी)

प्रकाशक

ला० मिट्ठीमल बाबूराम जी जैन

चौड़ा बाज़ार, लुधियाना ।

एङ्गलो ओरीयण्टल प्रेस चैम्बरलेन रोड लाहौर में

लालजीदास के अधिकार से छपा ।

तृतीयावृत्ति १०००] [1925.

श्रीजैनधर्म की जय ! श्रीजैनधर्म की जय !!

प्रथम पाठ*

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वितं नमस्संति जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

अर्थ—धर्म मंगल उत्कृष्ट है। दया संयम और तप धर्म के मूल हैं, देवते और चक्रवर्ती आदि भी उसको नमस्कार करते हैं, जिसका धर्म में सदा मन है ॥ १ ॥

जिस ने राग द्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया ।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया ॥ १ ॥
बुद्ध वीर जिन हरि हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो ।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो ॥ २ ॥
विषयों की आशा नहीं जिनके, साम्य भाव धन रखते हैं ।
निज पर के हित साधन में जो, निश दिन तत्पर रहते हैं ॥
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं ।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत् के, दुःख समूह को हरते हैं ॥ ३ ॥

---

* "मेरी भावना" नाम वाली पुस्तक बा० युगलकिशोर कृत से यह पाठ उद्धृत किया गया है ।

रहे सदा सत्सङ्ग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन ही जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे ॥
नहीं सताऊं किसी जीव को, झूठ कभी न कहा करूं।
परधन वनिता पर न लुभाऊं, सन्तोषामृत पिया करूं ॥ ४ ॥
अहङ्कार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूं।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्षा भाव धरूँ ॥
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहां तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ ॥ ५ ॥
मैत्री भाव जगत् में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन दुःखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे ॥
दुर्जन क्रूर कुमार्ग रतों पर, क्षोभ नहीं मुझ को आवे।
साम्य भाव रक्खूं मैं उनपर, ऐसी परिणति होजावे ॥ ६ ॥
गुणी जनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहां तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे ॥
होऊं नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥ ७ ॥
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊं या, मृत्यु आज ही आजावे ॥
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे ॥ ८ ॥
होकर सुख में मग्न न फूले, दुःख में कभी न घबरावे।
पर्वत नदी स्मशान भयानक, अटवी से नहीं भय खावे ॥

रहे अडोल अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़ तर बन जावे।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में, सहनशीलता दिखलावें ॥ ९ ॥
सुखी रहें सब जीव जगत् के, कोई कभी न घबरावे।
बैर पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावें॥
घर घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर होजावें।
ज्ञान चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें ॥ १० ॥
ईति भीति व्यापे नहीं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्म निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे॥
रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले; प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत् में फैल सर्व हित किया करे॥ ११ ॥
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर पर रहा करे।
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहीं, कोई मुख से कहा करे॥
बन कर सब युग वीर हृदय से, देशोन्नति रत रहा करें।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुःख सङ्कट सहा करें॥ १२ ॥

प्रिय बालक वा बालिकाओ! तुम को योग्य है कि इन भावनाओं का पाठ करके फिर इन के अर्थों की ओर ध्यान दो, क्यों कि जब तुम इन के अर्थों की ओर ध्यान दोगे, तब तुमको अपने कर्त्तव्यों का पूर्ण बोध होजायेगा। फिर तुम अपने पवित्र जीवन को ऊंच कोटि का बना लोगे अतएव सिद्ध हुआ कि भावनाओं द्वारा तुम्हारा जीवन ऊंच कोटि का बन सकता है।

इन भावनाओं के अतिरिक्त चार भावनाएं और भी हैं, जो तुमको सदैव काल अपने हृदय में स्थापन करनी चाहिएं। जैसे कि:—

(१) सत्वेषु मैत्री—सब जीवों से मैत्री भाव रखो।

(२) गुणेषु प्रमोदम्—जो तुम्हारे से अधिक गुणवान् हैं, उनको देखकर प्रसन्नता प्रकट करो।

(३) क्लिष्टेषु दया—दुखियों को देखकर उन पर दया भाव करो।

(४) माध्यस्थ—जो तुम्हारे देव गुरु वा धर्म की निन्दा करता हो वा तुम्हारी निन्दा करता हो तो उसको सभ्यता के साथ शिक्षा करो वा माध्यस्थ होजाओ किन्तु उन पर क्रोध मत करो, यह चारों ही भावनाएं तुम को सदैव आत्मा में स्थापन करनी चाहिएं।

दूसरा पाठ ।

थोकड़े का विषय ।

प्र०—दण्डक किसे कहते हैं ?

उ०—जिस में जीव दण्ड पाए, अर्थात् सुख वा दुःख का अनुभव करे ।

प्र०—दण्डक सारे कितने हैं ।

उ०—चौबीस २४ ।

प्र०—उन के नाम क्या २ हैं ?

उ०—सातों नरकों का एक दण्डक, दश भवनपतियों के दश दण्डक, पांच स्थावरों के पांच दण्डक । तीन विकलेन्द्रियों के तीन दण्डक । तिर्यंच पंचेन्द्रिय का एक दण्डक । मनुष्य का एक दण्डक । व्यन्तर का एक दण्डक । ज्योतिषी देवों का एक दण्डक । वैमानिक देवों का एक दण्डक । एवं सर्व चौबीस दण्डक हुए ।

प्र०—दश भवनपतियों के नाम क्या २ हैं ?

उ०—१ असुर कुमार, २ नाग कुमार, ३ सुवर्ण कुमार, ४

इन भावनाओं के अतिरिक्त चार भावनाएं और भी हैं, जो तुमको सदैव काल अपने हृदय में स्थापन करनी चाहिएं। जैसे किः—

(१) सत्वेषु मैत्री—सब जीवों से मैत्री भाव रखो।

(२) गुणेषु प्रमोदम्—जो तुम्हारे से अधिक गुणवान् हैं, उनको देखकर प्रसन्नता प्रकट करो।

(३) क्लिष्टेषु दया—दुखियों को देखकर उन पर दया भाव करो।

(४) माध्यस्थ—जो तुम्हारे देव गुरु वा धर्म की निन्दा करता हो वा तुम्हारी निन्दा करता हो तो उसको सभ्यता के साथ शिक्षा करो वा माध्यस्थ होजाओ किन्तु उन पर क्रोध मत करो, यह चारों ही भावनाएं तुम को सदैव आत्मा में स्थापन करनी चाहिएं।

दूसरा पाठ ।

थोकड़े का विषय ।

प्र०—दण्डक किसे कहते हैं ?

उ०—जिस में जीव दण्ड पाए, अर्थात् सुख वा दुःख का अनुभव करे ।

प्र०—दण्डक सारे कितने हैं ।

उ०—चौबीस २४ ।

प्र०—उन के नाम क्या २ हैं ?

उ०—सातों नरकों का एक दण्डक, दश भवनपतियों के दश दण्डक, पांच स्थावरों के पांच दण्डक । तीन विकलेन्द्रियों के तीन दण्डक । तिर्यंच पंचेन्द्रिय का एक दण्डक । मनुष्य का एक दण्डक । व्यन्तर का एक दण्डक । ज्योतिषी देवों का एक दण्डक । वैमानिक देवों का एक दण्डक । एवं सर्व चौवीस दण्डक हुए ।

प्र०—दश भवनपतियों के नाम क्या २ हैं ?

उ०—१ असुर कुमार, २ नाग कुमार, ३ सुवर्ण कुमार, ४

विद्युत् कुमार, ५ अग्नि कुमार, ६ द्वीप कुमार, ७ दिशा कुमार, ८ उदधि कुमार, ९ पवन कुमार, १० स्वनित कुमार।

प्र०—लेश्या किसे कहते हैं ?

उ०—योगों के कारण से जो भाव उत्पन्न होते हैं, उन से जैसा कर्मों का बन्ध होता है, उसी को लेश्या कहते हैं।

प्र०—लेश्या कितनी हैं ?

उ०—छै ६।

प्र०—उन के नाम बताओ ?

उ०—१ कृष्ण लेश्या, २ नील लेश्या, ३ कापोत लेश्या, ४ तेजो लेश्या, ५ पद्म लेश्या, ६ शुक्ल लेश्या।

प्र०—कृष्ण लेश्या के भाव कैसे होते हैं ?

उ०—निर्दय—हिंसा करने के भाव तथा महापरिग्रही—आश्रव सेवने के भाव सदा रहते हैं।

प्र०—नील लेश्या का लक्षण क्या है ?

उ०—ईर्ष्या करना, तप न करना, छल करना, पाप कर्म करते हुए लज्जा न करना।

प्र०—कापोत लेश्या का लक्षण क्या है ?

उ०—सरलता से रहित, निन्दा करने वाला टेढापन रखना और हरएक के अवगुणवाद कहने।

प्र०—तेजो लेश्या के लक्षण क्या २ हैं ?

उ०—विनयवान्, दृढ़ धर्मी, छल न करने वाला, चपलता न करने वाला, कौतूहलता से रहित और मर्यादा पूर्वक चलने वाला ।

प्र०—पद्म लेश्या के भाव कैसे होते हैं ?

उ०—क्रोध मान माया और लोभ का पतला करने वाला और पांचों इन्द्रियों के वश करने के उस के भाव होते हैं ।

प्र०—शुक्ल लेश्या का क्या लक्षण है ?

उ०—आर्त्तध्यान और रौद्र ध्यान को छोड़ कर केवल धर्म और शुक्ल ध्यान के करने वाला उपशम कषाय वाला तथा वीतराग भावके रखने वाला शुक्ल लेशी होता है।

प्र०—दृष्टि किसे कहते हैं ?

उ०—जिसके द्वारा वस्तु के स्वरूप को जाना जाए ।

प्र०—दृष्टि कितने प्रकार की होती है ?

उ०—दो प्रकार की ।

प्र०—वे कौन २ सी हैं ?

उ०—द्रव्य और भाव ।

प्र०—द्रव्य दृष्टि किसे कहते हैं ?

उ०—जो आंखों द्वारा वस्तु जानी जाए ।

प्र०—भाव दृष्टि कितने प्रकार की है ?

उ०—तीन प्रकार की।

प्र०—उन के नाम बताओ ?

उ०—१ सम्यग् दृष्टि, २ मिथ्या दृष्टि, ३ मिश्र दृष्टि।

प्र०—सम्यग् दृष्टि किसे कहते हैं ?

उ०—जो पदार्थों का यथार्थ स्वरूप है, उस को उसी प्रकार से जानना।

प्र०—मिथ्या दृष्टि किसे कहते हैं ?

उ०—पदार्थों के स्वरूप को उल्टा जानना।

प्र०—मिश्र दृष्टि किसे कहते हैं ?

उ०—जो हर एक पदार्थ को सम समझता है, किन्तु सत्य और झूठ का कोई भी विचार नहीं करता।

प्र०—ध्यान किसे कहते हैं ?

उ०—जिस के द्वारा वस्तुओं का स्वरूप चिन्तन किया जाए।

प्र०—ध्यान कितने प्रकार के होते हैं ?

उ०—चार प्रकार के ध्यान होते हैं।

प्र०—उन के नाम बताओ ?

उ०—१ आर्त्त ध्यान, २ रौद्र ध्यान, ३ धर्म ध्यान और ४ शुक्ल ध्यान।

प्र०—आर्त्त ध्यान का अर्थ क्या है ?

उ०—चिन्ता (शोक) करना।

प्र०—यह ध्यान क्यों होता है ?

उ०—इच्छानुकूल वस्तुओं के न मिलने से ही यह ध्यान उत्पन्न होजाता है।

प्र०—रौद्र ध्यान का क्या अर्थ है ?

उ०—दूसरों के लिए बुरे भाव धारण करना।

प्र०—रौद्र ध्यान क्यों आता है ?

उ०—जो पुरुष तत्त्व-बोध से रहित हैं, वह इच्छानुकूल वस्तु की प्राप्ति के लिए औरों का बुरा चिन्तन करते हैं और असभ्य ही बर्ताव करते हैं।

प्र०—धर्म ध्यान किसे कहते हैं ?

उ०—जो अनित्य भावनादि का विचार करना है और भगवत् की आज्ञा का पालन करना है कर्मों के स्वरूप को विचारना है उसी को धर्म ध्यान कहते हैं।

प्र०—शुक्ल ध्यान का क्या अर्थ है ?

उ०—आत्मा और ज्ञान की एकता विषय श्रेष्ठ विचार और द्रव्यों तथा पर्यायों के विषय सूक्ष्म से सूक्ष्म विचार करना वही शुक्ल ध्यान होता है।

प्र०—धर्मास्तिकाय किसे कहते हैं ?

उ०—जिसके सहारे से जीव वा अजीव गमन क्रिया में

प्रवृत्त होते हैं, क्योंकि यह पदार्थ उदासनिता पूर्वक सहायक होता है, जैसे मत्स्य को जल।

प्र०—द्रव्य से धर्मास्तिकाय कितना है ?

उ०—एक ही द्रव्य है।

प्र०—क्षेत्र से धर्म द्रव्य कितना है ?

उ०—लोक प्रमाण।

प्र०—काल से धर्म द्रव्य कब से है ?

उ०—अनादि है।

प्र०—भाव से धर्म द्रव्य का लक्षण क्या है ?

उ०—रूप से रहित, वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं स्पर्श नहीं।

प्र०—धर्म द्रव्य में गुण क्या है ?

उ०—चलने में सहायक होना।

प्र०—अधर्मास्तिकाय किसे कहते हैं ?

उ०—जो पदार्थों की स्थिरता में सहायक सहायक हो।

प्र०—अधर्मास्तिकाय के कितने भेद हैं ?

उ०—पांच।

प्र०—उनके नाम बताओ ?

उ०—द्रव्य से एक १, क्षेत्र से लोक प्रमाण २, काल से अनादि ३, भाव से अरूपी ४, गुण से स्थिरता में

सहायक। जैसे चलते हुए पथिक को वृक्ष की छाया सहायक होती है।

प्र०—आकाशास्तिकाय किसे कहते हैं?

उ०—जो जीव और अजीव को स्थान देवे।

प्र०—आकाशास्तिकाय के कितने भेद हैं?

उ०—पांच।

प्र०—उनके नाम बताओ?

उ०—द्रव्य से एक, क्षेत्र से लोकालोक प्रमाण, काल से अनादि, भाव से अरूपी, गुण से स्थान देने का स्वभाव।

प्र०—काल द्रव्य किसे कहते हैं?

उ०—जो वर्त रहा है।

प्र०—काल द्रव्य के कितने भेद हैं?

उ०—द्रव्य से अनन्त, क्षेत्र से अढाई द्वीप प्रमाण, काल से अनादि, भाव से अरूपी, गुण से वर्तना लक्षण जिस के कारण से नूतन से प्राचीन आदि व्यवस्था होती है।

प्र०—जीवास्तिकाय किसे कहते हैं?

उ०—जो जीवों का समूह है और चेतना लक्षण वाली जीव जाति है।

प्र०—जीवास्तिकाय के कितने भेद हैं ?

उ०—पांच ५।

प्र०—उनके नाम बताओ ?

उ०—द्रव्य से अनन्त, क्षेत्र से लोक प्रमाण, काल से अनादि भाव से अरूपी, गुण से चेतना लक्षण वाला।

प्र०—पुद्गलास्तिकाय किसे कहते हैं ?

उ०—जिसके मिलने और विछुड़ने का स्वभाव है।

प्र०—पुद्गलास्तिकाय के कितने के भेद हैं ?

उ०—पांच।

प्र०—उनके नाम बताओ ?

उ०—द्रव्य से पुद्गल अनंत, क्षेत्र से लोक प्रमाण, काल से अनादि, भाव से रूपी, वर्ण गन्ध रस स्पर्श से युक्त, और गुण से नाना प्रकार के पर्यायों को धारण करना।

प्र०—अस्तिकाय किसे कहते हैं ?

उ०—जिस के प्रदेश बहुत हों उसे ही अस्तिकाय कहते हैं।

प्र०—आत्मा के आत्म प्रदेश कितने हैं ?

उ०—लोक प्रमाण।

प्र०—संसार में राशि कितनी हैं ?

उ०—दो।

प्र०—वे कौन २ सी हैं ?

उ०—जीव राशि और अजीव राशि ।

प्र०—राशि किसे कहते हैं ?

उ०—समूह को ।

प्र०—काल द्रव्य के कितने भेद हैं ?

उ०—दो ।

प्र०—वह कौन २ सी हैं ?

उ०—निश्चय काल और व्यवहार काल ।

प्र०—निश्चय काल किसे कहते हैं ?

उ०—काल द्रव्य को ही निश्चय काल कहते हैं ।

प्र०—व्यवहार काल किसे कहते हैं ?

उ०—जो काल द्रव्य के विभागरूप—पल, घड़ी, दिन और मास, वर्ष और युगादि को व्यवहार काल द्रव्य कहते हैं ।

प्र०—लोकाकाश किसे कहते हैं ?

उ०—जहां तक जीव पुद्गल धर्म और अधर्म काल द्रव्य यह पांचों ही निवास करते हैं ।

प्र०—अलोकाकाश किसे कहते हैं ?

उ०—जिस में केवल आकाश ही है किन्तु अन्य पदार्थ कुछ नहीं हैं ।

प्र०—द्रव्य कितने हैं ?

उ०—छे ६ ।

प्र०—वे कौन २ से हैं ?

उ०—धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव और पुद्गल ।

प्र०—इनमें मूर्त्तिक कितने हैं और अमूर्त्तिक कितने हैं ?

उ०—द्रव्यों में केवल पुद्गल द्रव्य मूर्त्तिक है, शेष पांच अमूर्त्तिक हैं ।

प्र०—सप्रदेशी कितने हैं और अप्रदेशी कितने हैं ?

उ०—केवल काल द्रव्य अप्रदेशी हैं शेष पांचों सप्रदेशी हैं ।

प्र०—सप्रदेशी और अप्रदेशी किसे कहते हैं ?

उ०—जिस के प्रदेश हों वह सप्रदेशी होता है और जिसके प्रदेश न हों वह अप्रदेशी होता है ।

प्र०—सक्रिय द्रव्य कितने हैं और अक्रिय द्रव्य कितने हैं ?

उ०—निश्चय में ६ द्रव्य सक्रिय हैं, अपने २ कार्य करते हैं व्यवहार में जीव पुद्गल सक्रिय हैं शेष चारों द्रव्य अक्रिय हैं ।

प्र०—कर्त्ता और अकर्त्ता कौन २ से द्रव्य हैं ।

उ०—निश्चय में ६ द्रव्य अपने २ स्वरूप के कर्ता हैं, व्यवहार में जीव द्रव्य कर्त्ता है शेष पांच अकर्त्ता हैं ।

प्र०—जलचर जीव किसे कहते हैं ?

उ०—जो जल में मत्स्यादि रहते हैं।

प्र०—स्थलचर जीव किसे कहते ?

उ०—जो भूमि पर पशु आदि फिरते हैं।

प्र०—खेचर किसे कहते हैं ?

उ०—जो आकाश में पक्षी घूमते हैं।

प्र२—उरपुर कौन हैं ?

उ०—जो छाती के बल से चलता है जेसे सांप।

प्र०—भुजपुर कौन है ?

उ०—जो भुजाओं के बल से चलते हैं, जैसे नकुल, चूहा।

प्र०—नरक कितने हैं ?

उ०—सात—७।

प्र०—उनके नाम बताओ ?

उ०—घम्मा, वंशा, शेला, अंजना, रिष्टा, मघा, माघवती।

प्र०—सातों ही नरकों के सात गोत्रों के नाम बताओ ?

उ०—रत्नप्रभा, शर्कर प्रभा, बालु प्रभा, पंक प्रभा, धूम प्रभा तम प्रभा, तमतमा प्रभा।

प्र०—जो मनुष्य का मल-मूत्र है क्या उसमें भी जीव पड़ जाते हैं ?

तीसरा पाठ।

श्रावक के पांच अनुव्रत।

प्रिय भद्र पुरुषो ! जैसे हर एक प्राणी को अपने जीवन की इच्छा रहती है, उसी तरह जीवन को उच्च बनाने की भी इच्छा प्रत्येक प्राणी को होनी चाहिये। जब तुम्हारा जीवन पवित्र हो जाएगा, तब हर एक के लिऐ तुम आदर्श बन जाओगे और तुम्हारा आचरण ठीक हो जाने पर तुम्हारी भावी संतान अच्छे मार्ग पर आजायगी और तुम संसार में यश के पात्र बनोगे। हर एक के हृदय में तुम्हारा विश्वास बैठ जाएगा। अपितु जब तक तुम्हारा आचरण ठीक न होगा, तब तक तुम अपने प्यारे बच्चों को भी शिक्षा करने में समर्थ न होगे, इतना ही नहीं, किन्तु तुम को असह्य कष्टों का सामना करना पड़ेगा, फिर तुम पश्चाताप करोगे परन्तु तुम्हारी सुनवाई नहीं होगी।

इस लिये हर एक प्राणी को योग्य है कि अपने जीवन को पवित्र बनाने का परिश्रम करे और उसी के

अनुसार फिर अपना जीवन व्यतीत करे, फल इस का यह होगा कि पवित्र जीवन वाला जीव दोनों लोकों में सुखों का पात्र बन जाएगा ।

शास्त्रों में गृहस्थ धर्म के प्रतिपादन करने वाले अनेक सूत्र विद्यमान हैं, किन्तु "द्वादश व्रत" श्रावक के सुप्रसिद्ध हैं । जिन में पांच अनुव्रत, तीन गुणव्रत, और चार शिक्षाव्रत हैं, सो इस पाठ में पहिले पांच अनुव्रतों का स्वरूप दिखलाया जाता है ।

साधु मुनि महाराज के पांच महाव्रत होते हैं, इस लिए उन्हें पांच अनुव्रत कहते हैं ।

पहिला अनुव्रत ।

गृहस्थ को निरपराधी (जिसने हमारा कोई अनिष्ट नहीं किया) जीव को न मारना चाहिए, और जो स्थावर जीव हैं, उन की मर्यादा करनी चाहिए । किन्तु जो निरपराधि त्रस जीव हैं, उन को जान कर देख कर संकल्प करके जो मारना है, वह गृहस्थ धर्म के वर्ताव से बाहर है, क्योंकि गृहस्थ लोगों से सर्वथा तो जीव हिंसा से निवृत्त हुआ नहीं जाता, इस लिए उन के लिए निरपराधी जीव को नहीं मारना ऐसा नियम बनाया है

गया है और इस नियम की शुद्धि के लिए निम्न लिखित पांच बातों को भी गृहस्थ छोड़ देवे।

१—निरपराधी जीवों को क्रोध के वश होकर न बांधे।

२—क्रोध के वशीभूत होकर न मारे।

३—पशु के वा अन्य जीवों के अंगोपाङ्ग न छेदन करे।

४—जीवों पर अधिक भार न लादे।

५—किसी की वृत्ति छेदन न करे यथा हक मारना, नौकरी का न देना, यह कर्म भी प्रथम अनुव्रत में दोष लगाने वाले हैं।

इस प्रकार गृहस्थ को प्रथम अहिंसा व्रत का पालन करना चाहिए।

दूसरा अनुव्रत।

दूसरे अनुव्रत में झूठ का त्याग है, झूठ बोलने वाले की प्रतीत कोई नहीं करता विश्वास उस का नहीं रहता किसी काम में वह माननीय नहीं रह सकता, इस लिए किसी को भी झूठ न बोलना चाहिए। किन्तु गृहस्थ को पांच प्रकार का झूठ तो अवश्यमेव ही त्याग देना चाहिए जैसेकि—कन्याओं के लिए झूठ बोलना, छोटी उमर (आयु) वाली को बड़ी बताना, बड़ी को छोटी कहना, सरूपा को कुरूपा बताना, कुरूपा को सरूपा, अथवा अंग-हीन को

अंग सहित, और अंग सहित को अंगहीन कहना।

गृहस्थ को कन्याओं की बाबत कुछ न कहना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से उसकी आयु का सत्यानाश करना है।

२—गो आदि पशुओं के लिए भी झूठ न बोलना चाहिए क्योंकि वह अनाथ जीव हैं उन के लिए झूठ बोलने से फल उसका यह होगा कि वे मृत्यु के स्थान पर जा पहुंचेंगे।

३—भूमि के लिये भी झूठ न बोलना चाहिए। जैसे कि भूमि किसी और की हो, और उसको अपना बतलाना और उस के लिए माया जाल रच कर अनेक प्रकार प्रपंच करना। क्योंकि इस भूमि पर अनेक भूपति राज्य कर गए हैं। किन्तु यह वैसी की वैसी रही, इस के लिए अनेक राजाओं के युद्ध भी हुए, अनेकों के प्राण भी गए, अपितु भूमि यहां पर ही छोड़ गए, इस लिए गृहस्थ को भूमि के लिए भी झूठ न बोलना चालिए।

४—न्यासापहार भी न करना चाहिए, यदि किसी ने तुम्हारे पास बिना साक्षी वा बिना लिखित किए कोई वस्तु रख दी हो तो उसके मांगने पर ऐसा

मत कहो कि, मेरे पास तो वस्तु रखी नहीं तुम तो मुझ कलंकित करते हो, इस प्रकार से न कहना चाहिए ।

५—झूठी साक्षी भी न देनी चाहिए, जो झूठी साक्षी देते हैं वे शूरवीर नहीं होते औरों के चित्त को भी दुःखी करते हैं, धर्म से गिर जाते हैं शास्त्रों में झूठी साक्षी देने का बड़ा पाप माना गया है, इस लिए किसी को भी झूठी साक्षी न देनी चाहिए ।

साथ ही इस नियम के पांच अतिचार बतलाए गए हैं, उन को अवश्यमेवं छोड़ देना चाहिए क्योंकि उन के त्याग देने से ही सत्यव्रत रह सकता है । नहीं तो सत्यव्रत कलंकित हो जाएगा ।

वह दोष यह हैं जैसे कि:—

१—विना विचार वा निर्णय किए किसी को ऐसा न कहना चाहिए कि इस ने अमुक कार्य किया है क्यों-कि यह अभ्याख्यन पाप होजाता है, जिस ने काम न किया हो यदि उस को झूठा कलंक दिया जाए तब उसका आत्मा परम दुःखी होजाता है इस लिए विना सोचे मत भाषण करो ।

२—किसी की गुप्त वार्ता प्रगट भी नहीं करनी चाहिए

क्योंकि मर्म युक्त वार्त्ता के प्रगट करने से उसका मरण हो जाता है वा वह कोई और ही अकर्य कर बैठता है इस वास्ते किसी वार्ता को जो प्रसिद्ध नहीं है उस को प्रसिद्ध न करनी चाहिए, तथा जो काम चेष्टा के उत्पन्न करने वाली वार्तायें हैं उन्हें भी प्रगट न करना चाहिए ना ही परस्पर उपहास्य में वह वार्त्तायें करनी चाहिएं।

३—अपनी स्त्री की मर्म युक्त वार्त्ता भी न कहनी चाहिए क्योंकि ऐसा करने पर अपना ही उपहास्य होता है और परस्पर प्रेम का भी अभाव सा होने लगता है तथा द्वेश की वृद्धि होने पर फिर व्याभिचार की संभावना की जा सक्ती है इसी प्रकार स्त्री को भी अपने पति की कोई भी गुप्त बात प्रगट न करनी चाहिए यदि किसी बात का विरोध होवे तो परस्पर शान्ति कर ले अपितु लोगों के पास वह वार्त्तायें प्रगट न करें।

४—दूसरों को झूठ बोलने का उपदेश भी न देना चाहिए। जैसे कि–तुम इस प्रकार से झूठ बोलो फिर तुम्हारी जीत हो जाएगी-झूठ का उपदेश देने से आत्मा बड़े ही कर्मों को बांधता है और संसार में विश्वास का

पात्र नहीं रहता। लोगों में निंदनीय बन जाता है तथा संसार में जितने क्लेष हो रहे हैं वह सब झूठ उपदेश देने के ही फल हैं और इसी से अन्याय फैलता है, फिर उसी का परिणाम दुःख होता है। इस वास्ते झूठ बोलने का उपदेश न करना चाहिए।

५—कूट लेख भी न लिखने चाहिए, क्योंकि जो झूठे लेख लिखते हैं वह आप तो डूबते ही हैं परन्तु साथ औरों को भी डुबोते हैं इस लिए झूठे लेख न लिखने चाहिएं। असत्य लिखने से बहुत आत्माएं भ्रम में पड़ कर फिर उस असत्य में फंस कर औरों को भी असत्य में फंसाकर दुर्गति की अधिकारी बनाती हैं। इस प्रकार के दोषों को त्याग कर सत्यव्रत का सदैव काल पालन करना चाहिए।

तृतीय अनुव्रत—

तीसरा अनुव्रत चोरी का न करना है यद्यपि चोरी कई प्रकार की होती हैं, जैसे कि सूक्ष्म चोरी, और स्थूल चोरी सूक्ष्म चोरी उस का नाम है जैसे कि तुमने किसी से सूई इस लिए मांगी कि हम कांटा निकाल कर तुम को दे देंगे, यदि फिर तुम उस से वस्त्र सीने लग जाओ तो तुम को झूठ और चोरी दोनों पाप लगते हैं सो इस

प्रकार के व्रत तो गृहस्थ पालन नहीं कर सकते उनके लिए स्थूल चोरी का नियम होता है किन्तु सूक्ष्म से बचने का वह उपाय करते रहते हैं।

सो स्थूल चोरी पांच प्रकार से कही गई है जैसे कि किसी की भित्ति आदि का तोड़ना १ गांठ कतरना २ तालाओं को अन्य कुंजियों से चोरी के वास्ते खोलना ३ मार्ग में लूटना, ४ किसी की वस्तु को बिना आज्ञा उठाना, ५ यह पांच प्रकार से स्थूल चोरी होती है और इस के ही अन्तर्गत अन्य चोरीएं भी गर्भित होजाती हैं, जैसे कि स्त्री चोरी, पुरुष चोरी, और पशु चोरी, द्रव्य चोरी, इत्यादि चोरीयें कदापि न करनी चाहिएँ और इस व्रत की शुद्धि के वास्ते इसके पांच अतिचारों को भी त्याग देना चाहिए, जैसे कि:—

१—चोरी का माल न लेना चाहिए। क्योंकि जो च
का माल लेते हैं, वह एक प्रकार से चोरों
उत्तेजना देते हैं, जिस कारण वह चोरी से
हटते, दूसरे चोरी के माल लेने वाले की जो
लोगों में राज्य के द्वारा होती है वह सब के
है, इस लिए चोरी का माल कदापि न लेना च

२—चोरों की किसी प्रकार कि सहायता भी

चाहिए। जैसे कि चोरों को खान पान देना और उन को चोर जानते हुए स्थान देना तथा जिस प्रकार से उन की सहाय होसके उसी प्रकार उन को सहायता देना यह कर्म गृहस्थियों को न करना चाहिए।

३—जब राज्य न्याय पूर्वक चला आ रहा है, और राजा न्यायशील है, जिस के प्रताप से सिंह और बकरी एक घाट पानी पीते हैं। फिर उस राजा के विरुद्ध काम करना यह बड़ा भारी पाप है। इस लिए राज्य के विरुद्ध काम न करना चाहिए।

४—तोला मापा न्यूनाधिक (कम ज्यादा) न करना चाहिए। ऐसा करने से प्रतीत नहीं रहती और लक्ष्मी की वृद्धि भी इन कर्मों से नहीं हो सक्ती, भला किसी को ऐसी क्रियाओं के करने से कल्पना कर लो, लक्ष्मी की प्राप्ति हो भी गई हो। किन्तु उसकी बढी हुई लक्ष्मी सुख देने वाली कभी भी नहीं होती, देखो विदेशी लोगों ने जो व्यापार में उन्नति प्राप्त की है उसका मुख्य मूल कारण यही है कि वह लोग प्रायः व्यापार में सत्य से काम लेते हैं। इस लिए व्यापार में न्यूनाधिक न करना चाहिए।

५—बहु मूल्य वस्तु में अल्प मूल्य वाली वस्तु मिला कर न बेचनी चाहिए। क्योंकि यह विश्वास-घात है और ऐसा करने से व्यापार नहीं बढता है, किन्तु घट अवश्य जाता है। ऐसा करने से सत्य का नाश और अधर्म की वृद्धि हो जाती है अतएव सिद्ध हुआ कि वस्तु में मिलावट न करनी चाहिए।

चौथा अनुव्रत।

चौथा अनुव्रत स्वदारा स्वपति संतोषव्रत है, जिस में इस बात का उपदेश किया गया है कि पुरुषों को योग्य है कि वह अपनी धर्म पत्नी के विना और किसी प्रकार की किसी स्त्री के साथ काम चेष्टा न करें क्योंकि जो अपनी स्त्री के विना और का संग नहीं करते वह भी ब्रह्मचारी होते हैं। जैसे उदाहरण के लिए सुदर्शन सेठ आनन्द श्रावक तथा श्रीरामचन्द्र जी महाराज हैं, जिन को परस्त्री का नियम था इस कारण से वह महाराजा रावण पर विजय पा सके और सती सीता को पर पुरुष का नियम था उसने अनेक कष्टों का सामना तो कर लिया परन्तु अपने पातिव्रत पवित्र धर्म को नहीं छोड़ा इसी कारण वह फिर अपने प्यारे पति श्रीरामचन्द्र से मिल सकी। इतना ही नहीं किन्तु इसी ब्रह्मचर्य के माहात्म्य से श्रीरामचन्द्र ने त्रिखं

का राज्य प्राप्त किया।

सो स्त्री पुरुषों को अपना २ धर्म ब्रह्मचर्य रूप अवश्य ही पालन करना चाहिए। राजा रावण का रूप कामदेव के समान था किन्तु सती सीता ने कभी भी उस को अपनी आंखों से दृष्टि भर के नहीं देखा। देखना तो क्या था मन में भी कभी उसका ध्यान नहीं किया और महाराजा रामचन्द्र ने रावण के मारे जाने पर तथा सब प्रकार से उस पर विजय होने पर भी उसकी देवियों पर हस्ताक्षेप नहीं किया अपितु विभीषण के द्वारा उन की रक्षा का प्रबन्ध करा दिया।

अतएव सिद्ध हुआ कि स्त्री पुरुषों को अपने २ धर्म पर दृढ़ रहना चाहिए जिस प्रकार पातिव्रत धर्म पर स्त्रियों के लिये जोर दिया जाता है। ठीक उसी प्रकार पुरुषों को भी योग्य है कि, पर स्त्रियों वा वैश्याओं वा किसी और चेष्टाओं द्वारा ब्रह्मचर्य को भंग न करें। अपितु पति और पत्नियों को योग्य है कि वह भी परस्पर विषयी ही न बन जाएं क्योंकि प्रमाण से अधिक विषयवासना में प्रवृत्त होना हानि-कारक है। धर्म तिथियों में विषय सेवन न करना चाहिए। जब स्त्री के गर्भाधान हो जाए, फिर बालक उत्पत्ति पर्यन्त विषय सेवन न करना चाहिए।

एक शय्या पर रात्रि पर्यन्त न लेटना चाहिए, क्यों कि ऐसा करने से काम चेष्टा उत्तेजित होती है और निर्बलता तथा रोगों की प्राप्ति हुए बिना नहीं रहती इस प्रकार पातिव्रत वा स्त्रीव्रत धर्म को पालन करना चाहिए।

इस के भी शास्त्रों में पांच अतिचार (दोष) बतलाए हैं उन को छोड़ देना चाहिए, जैसे कि—

१—यदि कारणवशात् लघु अवस्था में पाणि संस्कार (विवाह) हो गया है तो उनको यावत् काल पर्यन्त यौवनावस्था प्राप्त नहीं हुई तावत्काल पर्यन्त विषय संग न करना चाहिए, क्योंकि–ऐसा करने से अनेक व्याधियें लग जाती हैं और निर्बलता की अत्याधिक प्राप्ति होती है राज-यक्ष्मादि (दिक्क तप) रोग भी इसी कारण से होजाते हैं तथा जिनका बाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य भंग होगया है उनके मन की चंचलता स्थिर नहीं होसक्ती इसी कारण से वह प्रायः व्यभिचारी बन जाते हैं। अपितु उनके प्रथम तो संतान होती ही नहीं, भला यदि हो भी जाए तो निर्बल और अल्प आयु वाली होती है, इस वास्ते बाल्यावस्था में विवाह होने पर भी विषय संग न करना चाहिए।

२—जिसका कन्या के साथ वाग्दान तो हो चुका है, किन्तु

अभी तक लोक रीति के अनुसार आर्य विवाह नहीं हुआ है, यदि ऐसी कन्या का कहीं एकान्त में मिलना हो जाए तो अपनी भावी स्त्री जानकर उसका संग न करना चाहिए, क्योंकि यह प्रथा लोक निन्दनीय और अधर्म का हेतु है। कदाचित् आर्य विवाह न होसके वा मृत्यु आदि के अनेक कारण उपस्थित हो जाएं, अपरञ्च कन्या के गर्भाधान स्थापित होजाने पर लोक अपवाद और धर्म हानि होती है, इस लिए वाग्दत्ता स्त्री के साथ भी सम्भोग न करना चाहिए, इसी प्रकार स्त्री को पुरुष के विषय में जानना चाहिए।

३—अनंग क्रीड़ा न करनी चाहिए—अनंग क्रीड़ा उसे कहते हैं, जो कामवश अनेक प्रकार की कुचेष्टाएं की जाती हैं, इस लिए ब्रह्मचर्य्य की रक्षा के लिए यह चेष्टाएं भी न करनी चाहिएं।

४—यदि किसी का कन्या के साथ वाग्दान हो चुका हो अर्थात् किसी और के साथ कन्या मांगी गई हो तो फिर उसको वहां से छुड़ा कर उस का सम्बन्ध अपने साथ कर लेना यह भी पतिव्रता धर्म में अतिचार रूप दोष ही बतलाया गया है। इस लिए इस व्रत की रक्षा के लिए औरों के हुए २ नातों को छुड़ा कर

अपने साथ संगठित न करना चाहिए इसी प्रकार पुरुष के विषय में जान लेना चाहिए।

५—काम चेष्टाओं में तीव्र भाव धारण करना यह भी एक प्रकार का अतिचार है, क्यों कि इस प्रकार करने से रोगों की प्राप्ति और धर्म विचारों में हानि पहुंचती है। तथा काम चेष्टा के उत्तेजन करने के लिए औषधियों का आसेवन करना यह अपने पवित्र शरीर को बलहीन बनाना है, क्यों कि विषय वासनाओं के संग करने से जरा-मरण-रोग-शोक इत्यादि की विशेष प्राप्ति होती है। इस लिए गृहस्थों को स्वदारा वा स्व-पति संतोष व्रत पर भली भान्ति दृढ़ रहना चाहिए।

पांचवें अनुव्रत विषय।

पांचवां अनुव्रत इच्छा निरोध है। इसमें गृहस्थों को जहां तक होसके वहां तक इच्छा का निरोध करना चाहिए। क्योंकि इच्छा से ही जीव नाना प्रकार के दुःखों का अनुभव करते हैं संसार में तृष्णा के समान कोई भी व्याधि नहीं है, इसलिए सूत्रों में गृहस्थोंके लिए यही प्रतिपादन किया गया है कि उनको तृष्णा का निरोध अवश्यमेव करना चाहिए। धन धान्य द्विपद और चपुष्पद तथा घर हाट वा आराम

(बाग़) भूमि, क्षेत्र, इत्यादि वस्तुओं का प्रमाण कर लेना चाहिए किंतु जो प्रमाण किया गया है। उसी के अनुसार वृत को शुद्ध पालन करना चाहिए।

संसार में यावन्मात्र प्राणी दुःखों का अनुभव करते हैं, उनका मुख्य कारण तृष्णा का निरोध न करना ही है, क्योंकि देखो, पक्षी जाल में क्यों फंसते हैं। मच्छी जाल में क्यों पड़ती है। बानर (बांदर) क्यों पकड़ा जाता है? इस का उत्तर यही है कि लोभ। न्याय धर्म उसी का नाम है जो तृष्णा को छोड़कर न्याय के साथ गृहस्थ लोग धन उत्पन्न करते हैं उस को तृष्णा नहीं कहते हैं, जो गाड़ी अपनी लैन पर ठीक चलती है वह अपने अभीष्ट स्थान पर ठीक समय पर पहुंच जाती है, किन्तु जो अपनी लैन से गिर पड़ती है वह बहुत सी हानि को प्राप्त होती है। इसी प्रकार न्याय पूर्वक कार्य करते हुए गृहस्थ लोग अपने गृहस्थ धर्म से पतित नहीं होते हैं। इस वास्ते गृहस्थों को यही योग्य है कि वह कभी भी प्रमाण से बाहिर कार्य न करें।

पांचवां पाठ ।

तीन गुणवृत विषय ।

पहिले गुणवृत में दिशाओं के परिमाण के विषय में कहा गया है। इस विषय में उपदेश दिया गया है, कि पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर, नीची और ऊंची दिशाओं का परिमाण अवश्य करना चाहिए।

दूसरा गुणवृत उपभोग और परिभोग है, इस में खान, पान, वस्त्र, स्नान, विलेपन, शाक, आभरण, पान, पुष्प माला, फल, जूती, दंतून (दातन) इत्यादि हर एक वस्तु का परिमाण करना चाहिए। क्यों कि विना परिमाण से सेवन किया हुआ अमृत भी विशेष फलप्रद नहीं होता इस लिए जो २ पदार्थ शरीर के उपयोग में आवें उन सब का यथा शक्ति परिमाण करना चाहिए। प्रथम स्नान को ही लीजिए, यदि परिमाण विना कार्य किया जाए तो एक तो जीव हिंसा, दूसरा लोगों में अपवाद और शरीर फिर पराधीन बन जाएगा। यदि पानी का एक वार वा दो वार इत्यादि प्रकार से परिमाण किया हुआ है तब एक तो दया

दूसरे सहन शक्ति उत्पन्न हो जाएगी। कोई ऐसा ही कष्टों का समय उपस्थित हो जाए तो फिर तुम उस गरमी से उत्पन्न होने वाले कष्टों को सहन कर लोगे। तथा वस्त्र को ही लीजिये जब तुमने स्वदेशी व्रत को धारण किया हुआ है, इस से तुम को दो लाभ अवश्यमेव होंगे। एक तो अविरत का पाप टल जाएगा। दूसरे तुम को वस्तु के मिलने में विशेष विलम्ब नहीं लगेगा, इस लिए सूत्रों ने इस बात का प्रकाश किया है कि हर एक वस्तु बिना परिमाण के न वर्त्तनी चाहिए। देखो, जब तुम किसी वस्तु का प्रण करते हो तब तुम्हारी आत्मा में एक अलौकिक उत्साह उत्पन्न हो जाता है। बस, प्रण को पूर्ण प्रकार से पालन करना और कष्टों के आजाने पर भी उस से विचलित न होना वही तुम्हारा धर्म है।

जिस व्यवहार के करने से बड़ी हिंसा होती हो, वह व्यापार भी छोड़ देना चाहिए। तंतुवाय कर्म (स्वदेशी कपड़े बुनने की कला) बजाजी कर्म, सराफ़ी इत्यादि व्यापार सूत्रों में आर्य व्यापार बतलाए गए हैं। इस लिए आर्य व्यापारों के सिवाय जो २ हिंसक व्यापार हैं, उनका सेवन न करना चाहिए, क्योंकि उन के करने से अधिक पाप होता है।

तीसरे गुण वृत में अनर्थ दंड का त्याग किया जाता है। जो काम न तो अपने ही काम आने वाला है न उस के किए जाने पर किसी और को लाभ पहुंच सकता है उस कर्म के करने से अनर्थ पाप लगता है ऐसे काम न करने चाहिएं। मार्ग में चलते समय वृक्षों के पत्ते ही तोड़ डाले सो न तो वह अपने ही काम आए न उन से किसी और को लाभ पहुंचा यही अनर्थ दण्ड होता है सो इस गुणवृत में इसी बात का प्रकाश किया गया है कि बिना प्रयोजन व्यर्थ काम न करना चाहिए। अपितु इतना ही नहीं किन्तु अपध्यान (बुरे विचार) भी न करने चाहिएं। काम करते समय प्रमाद न करना चाहिए। जिस दान के देने से हिंसा की प्रवृत्ति और भी बढ़ जाए ऐसे दान न करने चाहिएं, जैसे कसाई को छुरी का दान करना, इसके अतिरिक्त अन्य जीवों को पाप कर्म करने का उपदेश भी न देना चाहिए। तथा कंदर्पकाम को उत्पन्न करने वाली कथाएँ न करनी चाहिएँ और कुचेष्टाएँ भंड चेष्टाएँ होली वगैरह पर्वों में निर्लज्ज होकर असभ्य वर्त्ताव न करना चाहिए।

छठा पाठ ।

चार शिक्षा वृत ।

आत्मा की शान्ति के लिए वा अपनी आत्मा को प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रकार के उपाय किये जाते हैं । किन्तु उन क्षणस्थायी उपायों से यह आत्मा कदापि भी प्रसन्न नहीं होती अपितु यावन्मात्र इसको प्रसन्नता हुई थी जब उस वस्तु का वियोग होगया तब उस प्रसन्नता से कई गुणा बढ कर दुःख उत्पन्न होगया इस वास्ते धन, परिवार, यश, भोग, विलास, पुत्र, मित्र आदि यह सब सुख प्रसन्नता के कारण नहीं हैं । दोनों समय शान्तिपूर्वक सामायिक पाठ करना वास्तविक शान्ति इसी से मिल सकती है । इस वास्ते दोनों समय विधि अनुसार सामायिक करनी चाहिए ।

सम्वर वृत ।

अपनी आत्मा को पापों से हटा कर पुण्य में लगाना उसे ही सम्वर कहते हैं सो सम्वर अनेक प्रकार से किया जाता है, जितने देश का परिमाण किया हुआ है फिर

उतन देश से बाहिर का सम्बन्ध न रखना चाहिए तथा परिमित समय तो अवश्यमेव धर्म ध्यान में व्यतीत करना चाहिए।

सम्वर करने से पापों का आगमन रुक जाता है, और इस से धर्म की वृद्धि होती है, पापों से रोकने के मार्ग को ही सम्वर कहते हैं।

पौषध वृत।

आठ प्रहर पर्यन्त एक शुद्ध बसती (स्थान) में ठहर कर अन्न, पानी, खाद्य और स्वाद्य पदर्थों को छोड़ कर ब्रह्मचर्य को धारण करके शस्त्रादि को शरीर से उतार कर वा अभूषणों को त्याग कर उपवास करके जो एक स्थान में ध्यान लगा कर बैठना है उसी को पौषध वृत कहते हैं। आठ प्रहर तक धर्म ध्यान में ही रहना, तथा सूत्रादि का स्वाध्याय करना जहां तक होसके रात्रि भर जागते रहना फिर एकान्त स्थान में अकेले ही बैठे रहना धर्म क्रियाओं में समय व्यतीत करना यह सब क्रियाएं पौषधव्रत के अन्तर्गत हैं। यह व्रत धर्म तिथियों में अव-श्यमेव ही धारण करने चाहिएं इस से दो लाभ विशेष होते हैं एक तो आत्मा की सहन शक्ति बढ़ जाती है दूसरे

शान्ति और तप के द्वारा अनंत कर्मक्षय होजाते हैं। महाराजा अशोक के आदेशों में लिखा हुआ है कि महाराजा अशोक ने अपनी प्रजा को यह आज्ञा की थी कि यह पोषधव्रत सब लोग पालन करें जिस से उनके बड़ों का ऋण उतर जाए।

अतिथि संविभाग।

जो अतिथि जन हैं उनकी यथा योग्य सेवा करना यह गृहस्थों का चौथा शिक्षाव्रत है इसमें यह लिखा गया है कि जो साधु अपनी क्रिया में चलने वाले हैं। और किसी प्रकार का दोष नहीं लगाते सदैव काल अपने संयम साधन में लगे रहते हैं, उनकी वृत्ति अनुसार सेवा करना, निर्दोष भिक्षा देना और औषधि आदि का दान तथा उन की यथोचित सेवा का ही ध्यान बनाए रखना और प्रासुक (निर्जीव) वस्तुओं को ऐसे स्थान में न रखना जहां से उन को न दी जा सकें तथा जो अन्य स्वधर्मी जन हैं, उनकी यथा योग्य सेवा करना यह गृहस्थों का परम धर्म है। व्रती को दान देने से एकान्त निर्जरा (कर्मक्षय) होती है, फल उसका यह होता है कि जीव संसार मार्ग से तर जाता है इस लिए सदैव काल दान देने के भाव रखने चाहिएं जिस से निर्जरा होती रहे।

सातवां पाठ ।

वाणिज्य विषय ।

संसार में धन के अनेक साधन विद्यमान हैं, जिस प्रकार अन्य उपायों से धन प्राप्त होता है, उसी प्रकार व्यापार भी धन का एक मुख्य अंग है इसके द्वारा भी पुष्कल धन की प्राप्ति होजाती है पुरुष को ऐसे व्यापार न करने चाहिएं जिन से महा हिंसा और महा कर्म होजावे क्योंकि एक व्यापार ऐसा होता है कि जिसमें चाहे पुरुष धर्मात्मा भी हो किन्तु व्यापार हिंसा जन्य होने से हिंसा के भाव अवश्यमेव होजाते हैं जैसे कि बड़े २ शहरों में मुर्दा घाटों में लकड़ियों के वड़े २ टाल होते हैं मुर्दा जलाने वाले लकड़िएं उन्हीं स्थानों से खरीद कर लेते हैं सो यदि किसी दिन कोई मुर्दा वहां न पहुंचे तब वह कहने लगते हैं कि आज तो मंदा ही रहा जो कोई भी मुर्दा नहीं पहुंचा, अनार्य व्यापारों में इस प्रकार हिंसादि के बुरे भाव बने रहते हैं सो उन व्यापारों द्वारा लक्ष्मी उत्पन्न न करनी चाहिए अपितु उन व्यापारों को छोड़

देना चाहिए आर्य व्यापारों में इस प्रकार के भाव उत्पन्न नहीं होते हैं इसलिए गृहस्थ अनार्य व्यापारों का ध्यान छोड़ दे ।

खोटे व्यापार करने से परिणाम अच्छा नहीं निकलता है । जैन सूत्रों में १५ पंचदश कर्मादान बतलाए गए हैं जिन के करने से बड़े ही कर्मों का आगमन होता है वह कर्म निम्न लिखितानुसार हैं :—

१—कोयलों का व्यापार करना, इस व्यापार में जीव हिंसा विशेष होती है, यह कोयले दो प्रकार के होते हैं, एक तो लकड़ियों के जलाने से उत्पन्न किए जाते हैं दूसरे खान (कान) से निकाले जाते हैं परन्तु दोनों का व्यापार हिंसात्मक होने से त्यागने योग्य है । क्योंकि जो खान से कोयला निकाला जाता है वह भी महापाप का कारण है कोई समय तो ऐसा उपस्थित होजाता है कि खान के फट जाने से याव-न्मात्र मजदूर लोग काम करते होते हैं उन में अधि-कांश दल मृत्यु की भेट हो जाता है, जो कोयला लकड़ियों के जलाने से उत्पन्न किया जाता है वह भी बड़े पाप द्वारा किया जाता है । इसलिये कोयलों का व्यापार न करना चाहिए और इसी व्यापार में भट्टे

लगाने आदि और भी व्यापार जान लेने चाहिएं।

२—वन कटवाने के व्यापार भी न करने चाहिएं, क्योंकि इस व्यापार में अनंत जीवों का संहार हो जाता है और यह कर्म महा-हिंसक होने से कभी भी करने योग्य नहीं। आज कल के सायंसदानों ने भी वनस्पति में जीव सिद्ध कर दिया है, सो वह वृक्ष जो जीवों के समूह-रूप ही हैं। उन में बहुत सी वनस्पतियें अनंत जीवों की समूह-रूप हैं और बहुत सी असंख्यात जीवों की समूह रूप हैं सो उन वृक्षों का कटवाना अनंत वा असंख्यात जीवों का वध करना है, इस लिए वन कटवाने के ठेके लेने तथा उन वृक्षों से अपनी आजीविका का सम्बन्ध करना यह काम गृहस्थों को कदापि न करना चाहिए क्योंकि यह भी आर्य पुरुषों के योग्य नहीं है।

३—शकटीकर्म—जैसे गड्डे-गाड़ियें बनाकर इन को बेचना यह कर्म भी गृहस्थों के लिए अयोग्य हैं। क्योंकि इस कर्म के करने से जीव हिंसा की वृद्धि बहुत ही होती है और जहां पर यह चलाए जाते हैं वहां पर यत्न नहीं रहता है, इसी प्रकार जहाज़ों के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए, किन्तु यहां पर इस प्रकार के

व्यापार का ही निषेध किया गया है। क्योंकि व्यापार कुछ और होता है तथा घरों में अपनी सवारी के लिये गाड़ी का प्रबन्ध रखना कुछ और है। व्यापार से इस का कोई सम्बन्ध नहीं।

४—भाटक कर्म—पशुओं के भाड़े देने का व्यापार करना इस व्यापार में निर्दयता अत्यन्त बढ़ती है, क्योंकि जो पशुओं को कराये पर लेजाता है। वह सर्व प्रकार से उनकी रक्षा तो नहीं करता किन्तु अपने काम को ही मुख्य रखता है इस लिए जो पशुओं को कराये पर देते हैं वह पशुओं के साथ अन्याय से वर्ताव करते हैं क्योंकि पशु अपने दुःख को तो किसी के पास कह नहीं सकता, भूख और प्यास, थकावट, तथा बोझ से घबराया हुआ मृत्यु के समान होजाता है। इस लिये यह व्यापार भी न करना चाहिये।

५—स्फोटक कर्म—खानों का खुदवाना, पत्थर फोड़ने, शिला तुड़वाना पृथिवी का भेदन करना इत्यादि सर्वप्रकार की मिट्टी का आरंभ करना यह व्यापार भी त्यागने चाहिएं। यह केवल व्यापार की अपेक्षा से बन्द किये गये हैं।

हाथी के दान्त, गाय का चमर, मत्स्यादि के नख, शँख, कस्तूरी, मशक इत्यादि जितने त्रस जीवों के अवयव हैं, उन्हों का व्यापार न करना चाहिये। दान्तों का व्यापार तो क्या किन्तु दान्तों की चूड़ियें आदि भी न पहिरनी चाहियें, तथा जिन २ पदार्थों में दान्त लगा हुआ हो उन को भी ग्रहण न करना चाहिये, जैसे दान्त के चाकू, दान्त की डब्बियें इत्यादि

७—लाक्षा वाणिज्य—लाख का वाणिज्य करना इस में भी वहुत पाप वतलाया गया है, पीपल आदि वृक्षों की लाख तो केवल जीवों का समूह ही होता है। इसी प्रकार टंकणखार वड़ (निग्रोध) वृक्ष की गुलिकादि वेचना, यह व्यापार भी न करना चाहिये।

८—रसवाणिज्य—रसों का व्यापार करना यह भी अयोग्य है, क्योंकि इस में जो जीव पड़ते हैं, वह सव प्रायः मृत्यु होजाते हैं।

९—केश वाणिज्य—मनुष्यों, पशुओं आदि का व्यापार करना जैसे कि, कन्या विक्रय करना, वच्चों का वेचना, गो आदि पशुओं का वेचना, यह सव केश वाणिज्य में गिना जाता है, तथा पक्षियों का वेचना जैसे कि तोता, मैना, वाज़ इत्यादि पक्षियों का व्यापार भी

न करना चाहिए, किन्तु प्राणों से रहित जीवों के अवयवों का व्यापार दान्त वाणिज्य में ही जानना चाहिए।

१०–विष वाणिज्य–विष का व्यापार न करना चाहिए। क्योंकि इस से जीवघात होने की सम्भावना विशेष की जासक्ती है, तथा विष के व्यापार से बहुत से जीवों का पुरुषार्थ हीन बनाना है जैसे कि अफीम, पोस्त, भंग, चरस, संखिया, इत्यादि। इसी व्यापार के अन्तर्गत सब जाति के शस्त्र ग्रहण किए जाते हैं, जैसे कि तलवार, छुरी, चाकू, धनुष, बाण, हल, लांगल, कुद्दाल, इत्यादि जिनके द्वारा प्राण जाते हों वह सब अस्त्र शस्त्र विषवाणिज्य में ही जानने चाहिएं इतना ही नहीं, किंतु अरहट आदि कर्म वा क्षारादि का बेचना जैसे सज्जी, साबुन आदि भी इसी व्यापार के अन्तर्गत जान लेने चाहिएं।

११–यंत्र पीड़न कर्म–तिलों के पीड़न के यंत्र, सर्षप (सरसों) के पीड़न के यंत्र, एरण्ड के पीड़न के यंत्र, जल यंत्र, दल यन्त्र, धान्य पीड़न यंत्र, इत्यादि यंत्रों (मशीनों) का व्यापार भी हिंसा युक्त होने से गृहस्थों को त्यागना चाहिए।

१२–निर्लाञ्छन कर्म-नासादि का छेदन करना गोमहिषादि का तथा पशुओं का अङ्कित करना,(चिन्ह करने) और उनके अंडकोशों को निर्बल करना, ऊंटों की पृष्ट गालन करना तथा पशुओं के वा मनुष्यादि के अंगोपाङ्ग छेदन करना यह व्यापार भी गृहस्थों के करने योग्य नहीं हैं, क्योंकि इस में प्रत्यक्ष ही बड़ी हिंसा और यह भयङ्कर कृत्य है, इसलिए यह व्यापार भी गृहस्थों के करने योग्य नहीं है।

१३–वनदाव–वन को आग लगा देना जिस से कि वनस्पति विशेष उत्पन्न होगी, इस प्रकार करने से अनेक त्रस आत्मा प्राणों से विमुक्त होजाते हैं और यह महानिर्दयता का काम है, अतएव यह व्यापार भी गृहस्थों के करने योग्य नहीं है।

१४–शरः शोषन कर्म–जलाशयों को शुष्क करना, पानी के स्थानों को सुकाना। जैसे कूआ, तलाव, नदी, वापी इत्यादि स्थानों के सुकाने से ६ काय का वध होता है तथा जो जल के आश्रय निर्वाह करने वाले होते हैं उन जीवों का अन्तराय लगता है और उनका वध होजाता है, इसलिए जल के सुकाने के कर्मों का व्यापार न करना चाहिए।

१५–असती पोषण कर्म–हिंसक जीवों का हिंसा के लिए पोषण करना। जैसे बिल्ली का चूहों के मारने के लिए पालन करना, कुत्तों को शिकार के लिए इत्यादि जीवों को हिंसा की आशा पर जो पालन करना है, यह कर्म भी अयोग्य है, इसी कर्म में कसाई आदि हिंसक लोगों से व्यापार करने का निषेध किया गया है। क्योंकि जो इन हिंसक लोगों से व्यापार करते हैं, वह हिंसक कर्मों की वृद्धि करते हैं; क्योंकि जब उन को धन दिया जाता है तब वह प्रायः उसी धन से पशु खरीद कर पशुओं का वध करते हैं, इस वास्ते ऐसे हिंसकों से भी व्यापार न करना चाहिये। इस प्रकार यह व्यापार गृहस्थों को करने योग्य नहीं हैं, किन्तु सूत्रों में जो आर्य व्यापार बतलाए गये हैं, जब उनसे भली भान्ति निर्वाह होसकता है तो फिर क्यों अनार्य व्यापारों में फंसा जावे, आर्य व्यापार उस का नाम बतलाया गया है, जिस के करने से हिंसादि कर्म बहुत कम हों। जैसे तन्तुवाय (जुलाहे का कर्म) बजाजी, सराफी, जौहरी, कसेरा, सूत का व्यापार इत्यादि व्यापार आर्य कहे जाते हैं, इन में जीव हिंसा कम होती है और सत्य वचन आदि का

पालन भी भली भान्ति होसकता है। आर्य व्यापारों में भी असत्य न बोलना चाहिये, छल कपट न करना चाहिये, धोका न देना चाहिये, यत्न से बाहिर न होना चाहिये, तथा जो वस्तु ग्रहण करने में आती हों उन में विवेक अवश्यमेव होना चाहिये, व्यापार की उन्नति सत्य के शिर पर है इस लिए मुख से कभी भी असत्य न बोलना चाहिए, इतना ही नहीं किन्तु मुख से कठिन और स्नेह से रहित वचन बोलना भी अनुचित है।

आठवां पाठ।

सामायिक और सम्बर करने के पाठ।

प्रिय मित्रो! आत्मा की शान्ति के लिये दोनों समय सामायिक वा सम्बर का पाठ करना चाहिये। जब सारा दिन संसारी वासनाओं में जाता है तब कम से कम दो घड़ी पर्यन्त उन वासनाओं को रोक कर आत्मा में समाधि लाना भी उपयुक्त है। सामायिक में जहां तक होसके मौन-

वृत्ति अवलम्बन करके ध्यान में ही समय व्यतीत करना चाहिये, यदि ध्यान से समय शेष रहा हुआ है, तब इस समय को स्वाध्याय में लगाना चाहिये। अपितु संसारी वातों में वह पवित्र समय खो देना उचित नहीं है। सामायिक करने का स्थान शुद्ध और सामायिक के वस्त्र तथा आसन, रजोहरण वा रजोहरणी, मुख वस्त्रिका आदि उपकरण शुद्ध होने चाहियें फिर पूर्व वा उत्तर दिशा की ओर मुख करके श्रीसीमंदिर स्वामी की आज्ञा लेकर नमस्कार (नवकार) मन्त्र को पढ़कर सामायिक पाठ का उच्चारण करे।

जैसे कि—

करेमि भन्ते सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि, जावानियमं (मुहूर्त्त) पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं। न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा तस्स, भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

पदार्थ—(भंते) हे भगवन्! मैं (सामाइयं) सामायिक (करेमि) करता हूं, (सावज्जं) सावद्य (पापमय) (जोगं) योग का (पच्चक्खामि) त्याग करता हूं, (दुविहं) दो करण (तिविहेणं) तीन योग से (न करेमि) न करूँ (न कारवेमि)

न कराऊँ (मणसा) मन से (वयसा) वचन से (कायसा) काया से (भंते) हे भगवन्! (तस्स) उस पाप की (निन्दामि) आत्म साक्षि से निन्दा करता हूं, (गरिहामि) गुरू साक्षि से विशेष निन्दा करता हूं, इस लिये (पडिक्कमामि) पाप से पीछे हटता हूं, (अप्पाणं) आत्मा को (वोसिरामि) छोड़ता हूं अर्थात् पाप से आत्मा को अलग (पृथक्) करता हूं।

भावार्थ—इस पाठ में सामायिक करने वाला भगवान् की आज्ञा लेकर सामायिक काल वा सामायिक में त्यागने वाले कर्मों को जतलाता है। जैसे कि—हे भगवन्! अब मैं सामायिक करता हूं, जब तक मेरे सामायिक का समय है। तब तक मैं अपने मन वचन और काय के योगों को पाप कर्मों से निरोध करता हूं, मैं मन वचन काय से सामायिक में पापमय कार्य न आप करूंगा, न औरों से कराऊंगा तथा सदैव काल पापों को बुरा मानता हूं, इसलिए इस समय मैंने अपने आत्मा को पापों से पृथक् कर लिया है। मैं अब अपने आत्म-स्वरूप में प्रविष्ठ होता हूं, इस प्रकार पाठ को पढ़ कर आत्म विचार में वा स्वाध्याय में लग जाना चाहिए, फिर किसी जीव से वैर न करना चाहिए, पवित्र भावनाओं द्वारा समय व्यतीत

कर देना चाहिए, यद्यपि सूत्रों में केवल यही पाठ उपलब्ध होते हैं कि सामायिक चारित्र स्तोक (थोड़े) काल का भी होता है और यावज्जीव पर्यन्त का भी होता है। पूर्वाचार्यों ने सामायिक का काल एक मुहूर्त्त मात्र बांध दिया है, इस लिए अब तक यह प्रथा चली आरही है और इसी प्रकार होनी चाहिए यूं तो सामायिक चारित्र जघन्य एक समय मात्र भी प्रतिपादन किया गया है। सामायिक काल अपने पवित्र विचारों द्वारा वा स्वाध्याय द्वारा व्यतीत करना चाहिए और इन गाथाओं का भाव सामायिक में सदा विचारना चाहिए। जैसे कि—

जस्स सामाणओ अप्पा संजमे नियमे तवे।
तस्स सामाइयं होई इइ केवली भासियं ॥१॥

अनुयोगद्वार सूत्र

अर्थ—जिस के भाव संयम नियम तथा तप में रहते हैं, उसी की सामायिक होती है, इस प्रकार श्री केवली भगवान् कहते हैं।

जो समो सव्व भूएसु तसेसु थावरेसु य।
तस्स सामाइयं होई इइ केवली भासियं ॥२॥

अनुयोगद्वार सूत्र

अर्थ—जिस के त्रस और स्थावर जीवों में समभाव है, उसी की सामायिक होती है, इस प्रकार श्री केवली भगवान् कहते हैं।

जह मम णप्पियं दुक्खं,
जाणिय एवमेव सव्व सत्ताणं।
न हणइ न हणोवइ य,
समणेत्ति तेण सो समणो ॥३॥

अनुयोगद्वार सूत्र

अर्थ—जैसे मुझे दुःख प्रिय नहीं है, इसी प्रकार और जीवों को भी दुःख प्रिय नहीं हैं, जो ऐसे जान कर ना ही आप हिंसा करता है और ना ही दूसरों से कराता है तथा हिंसा करने वालों की अनुमोदना भी नहीं करता वही श्रमण (सामायिक वाला) होता है।

खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ति मे सव्व भूएसु वेरं मज्झ न केणई ॥४॥

आवश्यक सूत्र

अर्थ—मैं सब जीवों से क्षमापणा करता हूं, हे सब जीवो! तुम भी मेरे पर क्षमा करो, मेरा मैत्री भाव सब

जीवों के साथ है; किन्तु मेरा वैर भाव किसी के साथ भी नहीं है।

इस प्रकार के उत्तम विचारों से जब सामायिक का समय पूर्ण होजाए तब निम्न लिखित सूत्र पढ़ना चाहिए जैसे कि—

नवमी सामायिक व्रतना पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंज्जहा ते आलोऊं। मणदुप्पणिहाणे वयदुप्पणिहाणे कायदुप्पणिहाणे सामाइयस्स अकरणयाए सामाइयस्स अणवुट्ठियस्स करणयाए तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थ—नवमें सामायिक व्रत के पांच अतिचार (दोष) हैं। जो जानने योग्य तो हैं, किन्तु आचरण योग्य नहीं हैं। जैसे कि-मैं उनकी आलोचना करता हूं सामायिक में मन से दुष्ट ध्यान किया हो, वचन दुष्ट भाषण किया हो, काय दुष्ट पणे धारण किया हो, शक्ति होते हुए सामायिक न किया हो और सामायिक काल की विस्मृति की गई हो, यदि इन दोषों से कोई भी दोष

लग गया हो तो " मिच्छामि दुक्कडं " लेता हूं। अर्थात् उस पाप से पीछे हटता हूं, फिर नमस्कार मन्त्र पढ़ना चाहिए। सम्वर करने का यह सूत्र है—

दव्वओ पंच आसव्वस्स सेवणास्स पच्च-क्खामि खेत्तओ लोगप्पमाणो कालओ समय-प्पमाणो भावओ उवओगस्स सद्धिं गुणाओ निज्जरा हेऊ दुविहं तिविहेणं न करेमि न कार-वेमि, मणसा वयसा कायसा तस्स भंते पडि-क्कमामि निंदामि गारिहामि अप्पाणं वोसिरामि

अर्थ—द्रव्य से पांच आश्रव आसेवन का प्रत्याख्यान करता हूं, क्षेत्र से लोक प्रमाण, काल से समय प्रमाण (जितनी देर सम्बर करना हो) भाव से उपयोग के साथ, गुण से निर्जरा के हेतु दो करण और तीन योग से। जैसे कि-न करूं, न कराऊं मन से वचन से काय से। हे भगवन् ! मैं आश्रव की निंदा करता हूं गुरू की साक्षि से गर्हणा करता हूं और उस आश्रव से पीछे हटता हूं, अपनी आत्मा को पापों से पृथक् करता हूं ॥

जब सम्वर का समय पूर्ण होजाए, तब निम्न लिखित सूत्र पढ़ कर उस काल की आलोचना कर लेनी चाहिए ॥

दसवे देसावगासिय वयस्सणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंज्जहा ते आ-लोऊं आणवणप्पओगे पेसवणप्पओगे सद्दाणु-वाई रूवाणुवाई वहियापुग्गल पक्खेवे जो मे देवसि अइयार कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थ—दशवें सम्वर व्रत के पांच अतिचार रूप दोष हैं, जो जानने योग्य तो हैं, किन्तु ग्रहण करने योग्य नहीं जैसे कि-मैं उनकी आलोचना करता हूं, प्रमाण के बाहिर से वस्तु मंगवाई हो वा भेजी हो, शब्द करके अपना आप जतलाया हो अथवा रूप करके अपना आप दिखलाया हो तथा किसी वस्तु के फैंकने से किसी वस्तु का ज्ञान करा दि..ा हो, इस प्रकार जो मुझे कोई दोष लगा हो तो मैं उस दोप की भूल मानता हूं, आगे को फिर दोष न लगाऊं, इस प्रकार के भाव धारण करता हूं ।

यदि दिन में सम्वर किया हो तब "देवासि" ऐसे पाठ पढ़ना चाहिए, यदि रात्रि में किया हो, तब "राइसी" ऐसे पाठ कहना । फिर पांच नमस्कार मन्त्र पढ़कर सम्वर काल पूर्ण हो जाता है, किन्तु सामायिक की भान्ति सम्वर ..ाल में भी आत्म विचार, स्वाध्याय. ध्यान, भावनाएं

इत्यादि द्वारा समय व्यतीत करना चाहिए। अपितु धर्म कथा से व्यतिरिक्त निष्प्रयोजन व्यर्थ वार्त्ता न करनी चाहिए तथा निन्दा चुगली ईर्षा, असूया (औरों के गुणों में दोष निकालने) इत्यादि काम सामायिक और सम्वर में न करने चाहिएं, किन्तु 'मैं कौन हूं' 'कहां से आया हूं' 'कहां पर मैंने जाना है' इत्यादि प्रश्नों का सामायिक और सम्वर में निर्णय करना चाहिए।

नववां पाठ।

पौषध करने का पाठ।

इग्यार मुं पडिपुण्णं पौषध वृत असणं पाणं खाइमं साइमं चार आहार नुं पच्चक्खाण अवंभ सेवननुं पच्चक्खाण अमुक्कमणि सुवण्णा मालावन्नगविलेवणनुं पच्चक्खाण सत्थमूसला-दिक सावज्जं जोगनुं पच्चक्खाण जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि न कार-

वेमि मणसा वयसा कायसा तस्स भंते पडिक्क-
मामि निन्दामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥

आवश्यक सूत्र

अर्थ—इस ११ एकादशवें प्रतिपूर्ण पौषध व्रत में अन्न, पानी, खाद्य पदार्थ, स्वाद्य पदार्थ इन चारों आहारों का प्रत्याख्यान करता हूं। ब्रह्मचर्य को धारण करता हूं, जो मणि सुवर्ण उतारा नहीं जाता, उस के बिना और आभूषणों को उतारता हूं, माला चूर्ण चन्दन आदि विले-पन का प्रत्याख्यान करता हूं, शस्त्र मूशल आदि शस्त्रों को छोड़ता हूं और पापमय योगों का त्याग करता हूं यावत दिन रात्रि प्रमाण अर्थात् आठ प्रहर प्रमाण तक सेवा करता हुआ, इस व्रत को पालन करता हूं। दो करण और तीन योग से, जैसेकि—उक्त कार्य न करूं न कराऊँ मन से वचन से और काय से। हे भगवन्! मैं पाप कर्मों की निन्दा करता हूं, गुरु की साक्षि से गर्हणा करता हूं और पाप कर्मों से पीछे हटता हूं इतना ही नहीं, किन्तु पाप कर्म को अपने आत्मा से पृथक् करता हूं।

इस प्रकार पाठ पढ़ कर एकान्त शुद्ध स्थान में पौषध व्रत धारण करना चाहिए, अधिकांश समय मौनवृत्ति

ध्यानावस्था में ही व्यतीत करना चाहिए, जो शेष समय है, वह स्वाध्याय में लगाना चाहिए, रात्रि में धर्म जागरणा भी करनी चाहिए अर्थात् निद्रा को छोड़कर रात्रि भर धर्म विचार में रहना चाहिए, यद्यपि एक मास में छै पौषध व्रत धारण करने बतलाए गए हैं सो यदि छै न हो सकें यावन्मात्र हो सकते हों, तावन्मात्र पौषध अवश्य ही करने चाहिएं। इस में शारीरिक और आत्मिक दोनों प्रकार के लाभ बतलाए गए हैं। जब धर्म ध्यान-पूर्वक समय व्यतीत होजाए, तब निम्नलिखित सूत्र द्वारा इस व्रत की आलोचना कर लेनी चाहिए।

जैसे कि—

इग्यारस्मा पडिपुण्णं पोषध वृतना पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउँ अप्पाडिलेहिए दुप्पाडिलेहिए सेज्जा संत्थाराए अप्पमज्जिए दुप्पमज्जिए सेज्जा संत्थाराए अप्पाडिलेहिए दुप्पाडिलेहिए उच्चारपा-सवण भूमि अप्पमज्जिए दुप्पमज्जिए उच्चार-पासवण भूमि पोसहस्स सम्मं अणणुपालणियाय

जो मे देवासि अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

अर्थ—इग्यारवें प्रति-पूर्ण पौषध व्रत के पांच अतिचार रूप दोष बतलाए गए हैं, जो जानने योग्य तो हैं; किन्तु ग्रहण करने योग्य नहीं हैं जैसे कि-मैं उन की आलोचना करता हूं, पौषधव्रत में शय्या संस्तारक प्रतिलेखन न किया हो। यदि किया है तो शुद्ध प्रकार से नहीं किया और उच्चार प्रस्रवण (मूत्र) का स्थान प्रतिलेखन न किया हो। यदि किया है तो भली प्रकार से नहीं किया तथा पौषध को सम्यग् प्रकार से पालन न किया हो तो मैं उन दोषों से पीछे हटता हूं अर्थात् "मिच्छामि दुक्कडं" लेता हूं।

भव्य जीवों को यह व्रत अवश्यमेव धारण करना चाहिए देखो, इसी व्रत में कामदेव श्रावक ने देवता के किए हुए पिशाच, हाथी, और सांप के कष्टों को सहन किया किन्तु वह इस व्रत से गिरे नहीं हैं, जिस के कारण से श्री भगवान् महावीर स्वामी ने उनको सभा में धन्यवाद दिया और अपने साधुओं को कामदेव की ओर दृष्टि करके शिक्षित किया कि हे साधो ! देखो इस काम-

देव ने पौषध व्रत में धर्म जागरणा करते हुए देवता के किए हुए कष्टों को सहन किया है, तुम ने तो संसार को छोड़ दिया है और तुम भिक्षु बन गए हो। इसलिए तुम को हरएक प्रकार के कष्टों को शान्ति-पूर्वक सहन करना चाहिए, चाहे तुम्हें कोई प्राणों से भी हीन करता हो। फिर भी तुम को उस पर क्रोध करना योग्य नहीं है। शान्ति से उसको धर्म-पथ में लाना ही तुम्हें योग्य है, परन्तु उस पर रोष करना वा उसके समान ही वर्ताव करना यह तुम को शोभा नहीं देता, सो इस कथन से सिद्ध हुआ कि जो अपने ग्रहण किए हुए नियम में दृढ़ रखता है, वह धन्यवाद के योग्य अवश्यमेव हो जाता है, धन्यवाद के ही योग्य नहीं होता, किन्तु उसका शास्त्रों में स्वाध्याय प्रेमियों के लिए चरित्र रूप से कथन किया जाता है ॥

दशवां पाठ।

ईश्वर विषय।

प्र०—क्या जैनी लोग ईश्वर को मानते हैं ?

उ०—हां, जैनी लोग ईश्वर को मानते हैं।

प्र०—ईश्वर सर्वज्ञ है किम्वा अल्पज्ञ ?

उ०—सर्वज्ञ।

प्र०—ईश्वर सर्वदर्शी है किम्वा नहीं ?

उ०—सर्वदर्शी है, अल्पदर्शी नहीं है।

प्र०—ईश्वर में शक्ति कितनी है ?

उ०—ईश्वर अनन्त शक्ति वाला होता है।

प्र०—ईश्वर को कितना सुख होता है ?

उ०—अक्षय (क्षय-नाश रहित) सुख।

प्र०—ईश्वर सर्वव्यापक है किम्वा नहीं ?

उ०—ईश्वर ज्ञानसे सर्व-व्यापक है, किन्तु शरीर से रहित है।

प्र०—ईश्वर के लक्षण कौन २ से हैं ?

उ०—सर्वज्ञ, सर्व-दर्शी, अनन्त-शक्ति, अनन्त-वीर्य, अनन्त सुख, आत्म-स्वरूप में निमग्न।

प्र०—ईश्वर के मन है किम्वा नहीं ?

उ०—ईश्वर के मन नहीं होता।

प्र०—ईश्वर के वचन योग है किम्वा नहीं ?

उ०—जब उसके शरीर ही नहीं है तो भला शरीर के विना वचन योग किस प्रकार हो सकता है, इस लिए ईश्वर बोलता नहीं है।

प्र०—ईश्वर के नाम क्या २ हैं ?

उ०—ईश्वर के अनेक नाम हैं। जैसे कि—सिद्ध, बुद्ध, अजर, अमर, शास्वत, परमात्मा, खुदा, God.

प्र०—ईश्वर को कौन जानता है ?

उ०—योगी अपने ध्यान में देखते हैं ?

प्र०—ईश्वर आदि है किम्वा अनादि ?

उ०—अनादि ।

प्र०—क्या जैनमत में सिद्ध आत्माओं को ही सिद्ध कहते हैं ?

उ०—हां, जैनमत में सिद्ध जीव को ही सिद्ध कहते हैं। क्योंकि मुक्त आत्माओं के अनेक नाम हैं, उन में सिद्ध भी उन्हीं का एक शुभ नाम है।

प्र०—सिद्ध बद्ध है किम्वा मुक्त ?

उ०—सिद्ध मुक्त है बद्ध नहीं ।

प्र०—सिद्ध को इच्छा है किम्वा नहीं ?

उ०—ईश्वर इच्छा से रहित है उसे कोई भी इच्छा नहीं है

प्र०—ईश्वर ज्ञान में क्या २ देखता है ।

उ०—ईश्वर ज्ञान में सब कुछ देखता है ।

प्र०—जो भी काम हम छुप कर करते हैं क्या सिद्ध भगवान उसको भी देखते हैं ?

उ०—हां जो काम हम करते हैं, सिद्ध भगवान् सब जानते हैं और सब कुछ देखते हैं ।

प्र०—क्या वह तीन काल की बात जानते हैं ?

उ०—हां, वह तीनों काल की सब बातयें जानते हैं, उन से कुछ छिपा नहीं।

प्र०—ईश्वर के नाम जपने से क्या फल मिलता है ?

उ०—आत्मा में समाधि आती है और पाप कर्म क्षीण होते हैं।

प्र०—ईश्वर का रूप रंग है या नहीं।

उ०—ईश्वर का कोई रंग रूप नहीं है, इसी लिए उसे अरूपी कहते हैं।

प्र०—जीवन्मुक्ति किसे कहते हैं ?

उ०—जिस आत्मा के राग और द्वेष नष्ट होगए हैं और वह पूर्ण प्रकार से शान्त-रूप है, वही आत्मा जीवन्मुक्त होती है।

प्र०—क्या जीवन्मुक्त देहधारी (शरीर धारी) होते हैं ?

उ०—हां, जीवन्मुक्त देहधारी होते हैं, किन्तु वह शान्तात्मा जगत् के उद्धार करने वाले ही होते हैं।

प्र०—क्या सिद्ध भगवन्तों का स्वरूप जीवन्मुक्त आत्माओं ने ही बतलाया है ?

उ०—हां, अजर, अमर आत्माओं का स्वरूप जीवन्मुक्त आत्माओं ने ही प्रतिपादन किया है।

प्र०—भला यह तो बतलाओ जीवन्मुक्त किस प्रकार से बन सकता है ?

उ०—जब आत्मा सम्यग् दर्शन सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चारित्र से युक्त होता है, तब उसके क्रोध, मान, माया और लोभ-रूप दोष नष्ट होजाते हैं, फिर राग द्वेष काम क्रोध आदि शत्रुओं के नष्ट होने से सर्वज्ञ और सर्व-दर्शी बन जाता है, सो उसी जीव को फिर जीवन्मुक्त कहते हैं।

प्र०—क्या जीवन्मुक्त आत्माएं उपदेश भी करती हैं ?

उ०—हां जीवन्मुक्त आत्मा उपदेश भी करती हैं।

प्र०—वह उपदेश किस लिए करती हैं ?

उ०—वह उपदेश केवल परोपकार के लिए ही करती हैं, क्योंकि आत्माओं का मुख्य धर्म परोपकार करना ही है जो परोपकार नहीं करती वह आत्मा धर्म से गिर जाती है।

प्र०—बतलाओ, जो योगी आत्मा ध्यान में ही सदा रहते हैं, वह क्या परोपकार करते हैं; क्योंकि वह तो बोलते भी नहीं हैं ?

उ०—योगी आत्मा ने जो योग मुद्रा को धारण किया है और अपने मन पर विजय पा लिया है, जब कोई

उन की योग-मुद्रा को देखता है वा विचार करता है, तब उस के भावों में ज्ञान और वैराग्य की उत्पत्ति होने लगती है, फिर वह उनका यथा शक्ति अनुकरण करने लग जाता है, वह सब उन योगियों का ही उपकार है, इस लिए सदाचारी पुरुषों का सदाचार आदर्श-रूप होकर उपकार करता है, वह योगीजन अपनी योग मुद्रा से ही उपकार कर सकते हैं ।

प्रश्नावली ।

१—क्या जैनी लोग ईश्वर को मानते हैं ?

२—ईश्वर सर्वज्ञ है किम्वा अल्पज्ञ ?

३—ईश्वर के लक्षण क्या २ हैं ?

४—ईश्वर के शरीर है किम्बा नहीं ?

५—ईश्वर में शक्ति कितनी है ?

६—ईश्वर के और नाम कौन २ से हैं ?

७—ईश्वर को कौन जानतो है ?

८—ईश्वर सर्व-व्यापक है किम्वा नहीं ?

९—सिद्ध बद्ध है वा मुक्त ?

१०—ईश्वर क भजन से क्या फल होता है ?

११—जीवन्मुक्त किसे कहते हैं ?

१२—जीवन्मुक्त के क्या २ लक्षण हैं ?

१३—योगीजन क्या परोपकार करते हैं ?

ग्यारहवां पाठ ।

आस्तिकता विषय ।

प्र०—आस्तिक किसे कहते हैं ?

उ०—जो लोक और परलोक पुण्य पाप नरक और स्वर्ग जीव और अजीव को मानता है, वही आस्तिक होता है ।

प्र०—जैन आस्तिक हैं किम्बा नास्तिक हैं ?

उ०—जैन आस्तिक हैं नास्तिक नहीं ।

प्र०—हमने तो सुना है, जैन नास्तिक है, क्योंकि यह वेद को नहीं मानते ?

उ०—प्रियवर ! जो उक्त लोक परलोक आदि को मानता है, वही आस्तिक होता है; जैन तो वेदों को भी मानता है ।

प्र०—जैन वेद कौन से हैं ?

उ०—"विद् ज्ञाने" धातु से वेद शब्द बनता है, सो जिस पुस्तक में ज्ञान होवे वही वेद है, इस लिए जैनों के बारह अङ्गादि सूत्र सर्व वेद शास्त्र हैं, अतएव सर्व

श्रुत-ज्ञान वेद हैं ।

प्र०—वेद तो चार हैं ?

उ०—वेद शब्द तो ज्ञान का वाची है, किन्तु हिन्दु लोगों के माने हुए जो ऋग्, यजुर, साम, अथर्व धर्म पुस्तक हैं। उन्होंने इन की संज्ञा बांधली है। जैसे—ऋग्वेद इत्यादि किन्तु वास्तव में जैन सूत्रों की भी वेद संज्ञा है।

प्र०—जब जैन उक्त सब बातें मानता है तो फिर इस को लोग नास्तिक क्यों कहते हैं ?

उ०—एक तो लोग जैन शास्त्र कम पढ़ते हैं, दूसरे द्वेष के कारण भी जैन को नास्तिक बतलाते हैं ।

प्र०—जैनी अपने धर्म का प्रचार क्यों नहीं करते ?

उ०—यथाशक्ति—जैनी लोग अब अपने धर्म पुस्तकों के प्रचार से, जैन धर्म का प्रचार कर रहे हैं, जिस से विद्वानों को तो लाभ हो रहा है, किन्तु जिन लोगों के मन में द्वेष बैठ रहा है, उन को प्रचार क्या करेगा?

प्र०—जैनधर्म कब से है ?

उ०—अनादि काल से चला आता है ।

प्र०—इस में क्या प्रमाण है ?

उ०—जैन धर्म अनादि पदार्थों को मानता है, जैसे जीव और अजीव इत्यादि ।

प्र०—क्या कोई यह युक्ति है, कि जो अनादि पदार्थों को माने वही अनादि होता है ?

उ०—हां, यही बड़ी बलवती युक्ति है, क्योंकि 'सनातन' भी उसे ही कहते हैं, जो अनादि से हो इसी प्रकार जैन भी अनादि है।

प्र०—जैन धर्म ने किस बात का प्रचार किया, जो सब के लिए हितकारी उपदेश है।

उ०—अहिंसा धर्म का प्रचार अर्थात् दया का उपदेश किया, यह धर्म सब का हित करने वाला है।

प्र०—अहिंसा शब्द का अर्थ क्या है ?

उ०—किसी को दुःख मत दो, सब की रक्षा करनी चाहिए।

प्र०—अहिंसा शब्द का कोई और भी अर्थ है ?

उ०—अन्याय से वर्ताव न करना, अपितु न्यायपूर्वक चलना यही अहिंसा शब्द का अर्थ है; अहिंसा धर्म यही सिखलाता है कि किसी पर भी अन्याय से वर्ताव मत करो।

प्र०—धर्म सुनने से क्या फल होता है ?

उ०—धर्म सुनने से जीव और अजीव का ज्ञान होता है।

प्र०—ज्ञान होने से क्या फल मिलता है ?

उ०—ज्ञान से जीव सत्य को धारण कर लेता है, असत्य

को छोड़ देता है ।

प्र०—पुरातन कर्म क्षय से क्या होता है ?

उ०—आत्मा शुद्ध होजाता है ।

प्र०—नूतन कर्मों के निरोध करने से क्या फल मिलता है ?

उ०—संसार में जो जन्म और मरण करने हैं, उनसे आत्मा छूट जाता है ।

प्र०—अनाथों की रक्षा करने से क्या उपलब्ध होता है ?

उ०—दया धर्म का प्रचार, परोपकार, आत्म-शुद्धि, धर्म वृद्धि इत्यादि नाना प्रकार के सुन्दर फलों की प्राप्ति होती है ।

प्र०—विद्या दान करने से क्या लाभ होता है ?

उ०—जो विद्या का दान करते हैं, उनको जो लाभ होता है, उनके फल का वर्णन हम कर ही नहीं सकते, क्योंकि उन्होंने जिन आत्माओं को ज्ञान दान दिया है, उस ज्ञान से जो उनको प्रकाश हुआ है, उस परोपकार रूप ऋण का बदला चुकाने की सामर्थ्य नहीं होती । इसलिए विद्या दान सब दानों में से श्रेष्ठ दान है ।

प्र०—क्या श्रुत पढ़ाने से कर्म क्षय होजाते हैं ?

उ०—हां, अवश्य कर्म क्षय होते हैं ।

प्र०—क्लेश के मिटाने से क्या फल होता है ?

उ०—शान्ति होजाती है, वैरभाव मिट जाता है, मैत्रीभाव होजाता है, फिर सब प्रकार की सम्पदाएं बढ़ने लग जाती हैं ।

प्र०—समय विभाग करके फिर उसके अनुसार कार्य करने से क्या लाभ होता है ?

उ०—ज्ञानावरणीय कर्म क्षय होते हैं, कार्य ठीक होता है, और समय का मूल्य प्रतीत होजाता है, ज्ञान बढ़ जाता है ।

प्र०—जो जीव प्रमाद करते हैं, उनको क्या फल मिलता है ?

उ०—उनके प्रायः सर्व काम बिगड़ जाते हैं ।

प्र०—क्या आलस्य करना भी किसी समय अच्छा होता है ?

उ०—हां, खोटे काम करने में आलस्य करना भी अच्छा होजाता है, इसलिए बुरे काम करते समय आलस्य करना ही चाहिये ।

प्र०—बलवान् आत्मा अच्छे होते हैं वा निर्बल अच्छे होते हैं ?

उ०—कोई बलवान् अच्छे होते हैं, कोई निर्बल अच्छे होते हैं ?

प्र०—कौन २ से आत्मा बलवान् अच्छे होते हैं, कौन २ से आत्मा निर्बल अच्छे होते हैं ?

उ०—धर्मात्मा न्याय पक्षी आत्मा बलवान् अच्छे होते हैं

किन्तु पापिष्ट दुराचारी अन्याय करने वाले आत्मा निर्बल अच्छे होते हैं।

प्र०—सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उ०—जो देवगुरू धर्म को ठीक समझता हो और षट्द्रव्य के स्वरूप को भली भान्ति जानता हो।

प्र०—उपशम किसे कहते हैं ?

उ०—क्रोध, मान, माया और लोभ को शान्त करना।

प्र०—वैराग्य किसे कहते हैं ?

उ०—पदार्थों के नित्य और अनित्य स्वरूप का विचार करना।

प्र०—निर्वेद किसे कहते हैं ?

उ०—विषय विकारों से मन को हटा लेना।

प्र०—सम्यक्त्वी का मुख्य लक्षण क्या है ?

उ०—आस्तिक होना। जैसे—जीव अजीव, पुण्य पाप, नरक स्वर्ग, लोक और परलोक षट्द्रव्य, नवतत्व आदि पदार्थों को मानना वही आस्तिक होता है, सम्यक्त्वी इन सब को मानता है, इस लिए वही आस्तिक है।

प्रश्नावली ।

१—आस्तिक किसे कहते हैं ?

२—जैन आस्तिक हैं किम्वा नास्तिक ?

३—वैराग्य का क्या अर्थ है ?

४—उपशम किसे कहते हैं ?

५—समय विभाग करने से क्या लाभ होता है ?

६—प्रमाद करने से क्या फल मिलता है ?

७—आलस्य करना अच्छा है वा बुरा ?

८—सम्यक्त्वी किसे कहते हैं ?

९—अनाथों की रक्षा करने से क्या फल मिलता है ?

१०—धर्म सुनने से क्या लाभ होता है ?

११—क्या श्रुत पढ़ाने से कर्मक्षय होजाते हैं ?

१२—विद्यादान से क्या लाभ होता है ?

१३—क्या जैन वेद को मानता है ?

१४—जैन धर्म कब से है ?

१५—अहिंसा शब्द का अर्थ क्या है ?

बारहवां पाठ ।

जैन और बौद्ध धर्म ।

प्रिय पाठको ! जब दो मतों की व्यवहार (प्रत्यक्ष) में एक शिक्षा प्रतीत होती है, तब बहुत से लोगों को यह कहने का अवसर मिल जाता है कि अमुक मत अमुक मत की शाखा है, क्योंकि इस शाखा ने इस मत का अनुकरण किया हुआ है, यही कारण इस समय जैन मत के साथ होरहा है, बहुत से लोग जैन मत को बौद्ध मत की शाखा ही समझ बैठे हैं, उन्होंने प्रायः जैन मत के शास्त्रों को पढ़ा नहीं है, वह यों ही कहने लग गए हैं कि जैन बौद्धों की शाखा ही है, सो यह कथन उन लोगों का ठीक नहीं है, जैनमत एक स्वतन्त्र मत है, उस ने किसी मत का भी अनुकरण नहीं किया। किन्तु जैनमत के माने हुए स्याद्वाद का सभी लोगों ने अनुकरण किया है । जैसे कि—यह वस्तु इस प्रकार से है और इस प्रकार से नहीं है, इस प्रमाण में किसी एक पुरुष को लेलो, वह अपने पुत्र की अपेक्षा पिता कहा जाता है और अपने पिता की अपेक्षा

पुत्र कहलाता है तथा जब हम उस के पितामह का नाम लेते हैं तब उसे पोते के नाम से पुकारते हैं और जब उस के पोते को देखते हैं, तब हम उस को पितामह कहते हैं। किन्तु पुरुष वही है, जिस के नाते के सम्बन्ध से उसे बुलाया जाता है। उसकी अपेक्षा से उसका वही नाम ठीक होता है, इसी प्रकार जब हम किसी एक द्रव्य को देखते हैं; उस समय जिस पर्याय (हालत) को अवलम्बन करके हम उसे बुलाते हैं, उसी पर्याय से वह नाम उस का ठीक होता है। जैसे कोई पुरुष जब दुकान पर काम करता है, तब उस को दुकानदार कहते हैं और जब वह किसी अपराध के कारण से कारागृह (जेल) में चला जाता है फिर उसी को कैदी कहा जाता है सो इसी प्रकार हर एक द्रव्य की यही व्यवस्था है, इस सिद्धान्त का हर एक मत ने अवलम्बन किया है, इतना ही नहीं, किन्तु इस के बिना माने किसी का भी निर्वाह नहीं हो सकता सो बौद्ध लोगों ने भी बहुत सी बातों का जैनमत का ही अनुकरण किया हुआ है, क्योंकि आज से २४५१ वर्ष पहिले श्री श्रमण महावीर स्वामी इस भूमि को अपने अमृतमय उपदेशों से पावन कर रहे थे, उन के समकालीन महात्मा गौतम बुद्ध भी अहिंसा मत का

हास में लिखा है कि पहिले गौतमबुद्ध ने भगवान् श्री पार्श्वनाथ अर्हत् के पिहिताश्रव मुनि के पास दीक्षा धारण की थी फिर उन से पृथक् होकर अपने माने हुए क्षणिक वाद नाम वाले बौद्ध मत का प्रचार किया और बुद्ध के जीवन चरित्र में भी लिखा है कि महात्मा बुद्ध को एक श्रमण ने उपदेश किया था, सो "श्रमण" शब्द का अर्थ भिक्षु है, यह शब्द जैन सूत्रों में ही व्यवहृत हुआ है और किसी भी हिन्दु मत के आर्ष-ग्रन्थों में श्रमण शब्द संन्यासी के लिए नहीं आया है, अपितु जैन सूत्रों में "श्रमण" शब्द का पुनः २ प्रयोग किया हुआ है, इस लिए वह श्रमण शब्द का लक्ष्य पिहिताश्रव मुनि के ओर ही किया गया है, अतएव इस से सिद्ध हुआ कि बुद्ध ने प्रायः धार्मिक शिक्षाएँ जैनमत से लीं, फिर जैनमत के समान ही अपने चार संघ बनाए, जैसे कि—श्रमण और श्रमणी, श्रावक और श्राविका अपने ग्रन्थ भी पाली प्राकृत में ही निर्माण किये उन्होंने वहां प्रयोग किए, जो जैन सूत्रों में किए हुए हैं । यथा अर्हत्, जिन, केवल प्रत्येक बुद्ध, स्वयं बुद्ध संघ धम्मपद आदि । जैन शास्त्रों में साधु वृत्ति के उपयोग में "फासुय" "प्रासुक" शब्द प्रयोग पुनः २ आता है, इसका अर्थ है कि निर्जीव

पदार्थ अर्थात् साधु अचित्त पदार्थों को सेवन करे सो इसी शब्द का प्रयोग महात्मा बुद्ध ने भी अपने माने हुए आर्ष-ग्रन्थों में किया है, परन्तु बुद्ध के जीवन में बौद्धमत का अति प्रचार नहीं हुआ, अपितु महाराजा अशोक ने इस मत का प्रचार खूब ही किया तब से बौद्ध लोगों की वृद्धि हुई।

श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने आत्मद्रव्य को अनादि प्रतिपादन किया, फिर इस बात को जतलाया कि द्रव्य नित्य है, अपितु, उसके पर्याय (हालतें) परिवर्त्तन शील हैं जिस में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य यह तीनों लक्षण यथार्थ संघटित हों उसे ही द्रव्य कहते हैं। जैसे कि—कल्पना करो कि आज दिन किसी के पुत्र का जन्म हुआ है तो यहां पर तो उसकी उत्पत्ति है परन्तु जहां से वह मर कर आया है, वहां पर उसकी मृत्यु (नाश) मानी जाती है अपरंच जीव द्रव्य जैसे वहां पर था, वैसे ही यहां पर है, इसी प्रकार हर एक पदार्थ के विषय में जान लेना चाहिये अतएव पर्याय क्षणविनश्वर तो हैं परन्तु द्रव्य नहीं।

भगवान् महावीर स्वामी ने इस बात का भी प्रचार किया कि पाप कर्म आत्मा मन वाणी और काय के द्वारा

ही बांधते हैं यद्यपि पाप कर्म केवल मन पर ही निर्भर नहीं हैं तथापि इस में भी कोई संदेह नहीं है कि मन से किए हुए कर्म बलवान् होते हैं, किन्तु व्यवहार पक्ष में सदाचार के पालने के लिए काया को वश करने की आवश्यकता है। जैसे कोई दुराचारी पुरुष बड़े से बड़े अत्याचार को करके फिर कह दे कि मैंने यह कर्म तो कर लिए हैं, परन्तु मेरा मन इनको करने का नहीं था, तब राज पुरुष उसकी कही हुई बात को स्वीकार नहीं करते, अपितु उसे दंडित ही करते हैं सो इस से सिद्ध हुआ कि व्यवहार पक्ष में सदाचार की सिद्धि के लिये काय के द्वारा किया हुआ पाप बलवान् होता है और भाव पक्ष में मन से किया हुआ पाप बलवान् होता है।

यदि सर्व प्रकार से मन से ही किया हुआ पाप बलवान् सिद्ध किया जाएगा। तब संसार में अबोध प्राणियों में व्यभिचार की वृद्धि अत्यन्त बढ़ जाएगी। अतः व्यवहार पक्ष में सदाचार की सिद्धि के लिये भगवान् महावीर स्वामी जी ने काय के वश करने का उपदेश किया। मांस में असंख्यात सम्मूर्च्छिम जीव पड़ जाते हैं, इसलिए सभ्य पुरुषों को मांस का छूना भी योग्य नहीं है, खाना तो दूर ही रहा। अतः बुद्ध का सिद्धान्त विषय जैन मत से बहुत

सा भेद रखता है, किन्तु बहुतसी बाह्य क्रियाएं बुद्ध ने जैन मत से ली हैं, इतना ही नहीं, किन्तु उन क्रियाओं का प्रचार भी खूब ही किया। जैसे यज्ञ में पशु हवनादि का निषेध किया और अपने सेवकों का नाम भी श्रावक ही रक्खा है, फिर उनके लक्षण भी अपने सूत्रों में वैसे ही वर्णन किए जैसे कि जैन सूत्रों में श्रावक लोगों के लक्षण वर्णन किए हुए हैं।

अपि दिव्वेसु कामेसु, रति सेनाऽधि गच्छति।
तण्हक्खयरतो होति, समासम्बुद्ध सावको॥

धम्मपद० वर्ग० १४ गाथा ९

अर्थ—जो देवताओं के काम भोगों में आनन्द को प्राप्त नहीं होता और तृष्णा का नाश जिसने कर दिया है वही समासम्बुद्ध का श्रावक है।

तथा च

सुप्प बुद्धं पबुज्झान्ति, सदा गोतम सावका।
येसं दिवाचरत्तो च, निच्चं संघगतासति॥

धम्म० वर्ग० २१ गा० ९

सुप्प बुद्धं पबुज्झान्ति, सदा गोतम सावका।
येसं दिवा चरत्तो च, अहिंसा-य रतो मनो॥

धम्म० व० २१ गा० ११

सुप्प बुद्धं पबुज्झन्ति, सदा गौतम सावका ।
येसं दिवा चरत्तो चः भावनाय रंतो मनो ॥

धम्म० व० २१ गा० १२

अर्थ—जिनको उत्तम बोध है वही बुद्ध के श्रावक हैं फिर जो सदा ही दिन और रात्रि में संघ के शरणागत हैं इतना ही नहीं किन्तु दिन और रात्रि में जिनका अहिंसा में मन लगा हुआ है तथा पवित्र भावनाओं में मन लगा हुआ है वही बुद्ध के श्रावक हैं।

इत्यादि गाथाओं में जैनमत का ही अनुकरण किया हुआ है, इसलिए जैनमत बुद्धमत की शाखा नहीं है, किन्तु बुद्धमत न जैनमत का अनुकरण किया है और हिन्दूमत भी पहिले जैनमत के प्रवर्त्तक ऋषभ अवतार का वर्णन करके फिर पीछे बौद्धमत के प्रवर्त्तक बुद्ध अवतार का वर्णन करते हैं, इस से भी यह सिद्ध हुए बिना नहीं रहा है कि जैनमत बौद्धमत से पहिले है और मि० जेकोबी साहब भी उत्तराध्ययन वा आचारांग सूत्र की प्रस्तावना में यही लिखते हैं कि जैनमत बौद्धमत से पुराना है।

जैनमत के नियमों का ही बौद्ध लोगों ने अनुकरण

किया है। जो बौद्ध लोगों ने माने हुए त्रिपिटक ग्रंथ हैं उनके पढ़ने से भी भली भान्ति ज्ञात होजाता है कि बहुत सा कथन बौद्धों ने जैनों से ही सीखा है॥

तेरहवां पाठ

कर्मों का फल।

प्र०—जैसे प्राणी कर्म करते हैं क्या उनका फल वैसे ही भोगते हैं?

उ०—हां, जैसे भावों से जीव कर्म करते हैं, जिस प्रकार उन कर्मों का बंध होता है, जिस प्रकार से वह उदय आते हैं उसी प्रकार उन कर्मों के फलों को जीव भोगते हैं।

प्र०—कर्म जड़ है वा चेतन?

उ०—कर्म जड़ हैं।

प्र०—कर्मों का फल फिर कौन भुगतता है?

उ०—जीव अपने आप उन कर्मों के फल को भोगता है।

प्र०—जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है वा पर[illegible]?

उ०—जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है।

प्र०—फल भोगने में स्वतन्त्र है किम्वा परतन्त्र ?

उ०—कर्मों का फल भोगने में परतन्त्र है।

प्र०—जब फल भोगने में परतन्त्र है तो फिर अपने आप तो कोई दुःखी बनना नहीं चाहता तो फिर अपने आप जीव दुःख कैसे भोगते हैं ?

उ०—जब जीव कर्म करते हैं, तब ही उनके भोगने के निमित्तों को बांध लेते हैं, फिर जब कर्म भोगने का समय आता है, वही निमित्त खड़े होजाते हैं, जैसे किसी ने रोग के द्वारा दुःख पाना हो तो रोग के उत्पन्न होने के अपथ्य आहारादि कारण उपस्थित हो ही जाते हैं।

प्र०—वह निमित्त कौन २ से हैं, जिनके द्वारा जीव कर्मों के फल भोगते हैं ?

उ०—वह निमित्त पांच हैं। जैसे कि—काल, स्वभाव, नियति कर्म और पुरुषार्थ।

प्र०—यह तो पांचों जड़ हैं, इनसे फल कैसे मिल सकता है ?

उ०—यह पांचों जीव के कर्म भोगने के कारण हैं, जैसे ऋतु के आने पर वृक्ष पर अंकुर आने लगते हैं, किन्तु ऋतु (मौसम) तो जड़ था फिर अंकुर कैसे आगए

तथा ज्वर आदि रोग तो जड़ हैं तो फिर जीव पर आक्रमण कैसे करते हैं। जैसे ऋतु और रोग जड़ होने पर भी अपना प्रभाव दिखाते हैं वैसे ही निमित्त आने पर जीव फल भोगते हैं।

जैन का आक्षेप—वृक्ष में अंकुर वा जीव को रोग इत्यादि क्या यह सब ईश्वर की इच्छा से फल मिलते हैं ?

वादी०—ईश्वर की इच्छा तो नहीं है, किन्तु उसकी शक्ति द्वारा ही जीव फल भोग लेते हैं।

जैन०—शक्ति जड़ है किम्बा चेतन ?

वा०—शक्ति चेतन है, जड़ नहीं है।

जैन०—जब शक्ति चेतन है, और ईश्वर आकाशवत् सर्व व्यापक है, तो फिर शक्ति की प्रेरणा किसी एक व्यक्ति को होती है वा सब जीवों को होती है तथा शक्ति को स्फुरणा युगपत् समय में होती है वा अयुगपत् समय में, और ईश्वर व्यापक है उसके एक देश में स्फुरणा होती है अथवा सर्वांश में होती है ? क्योंकि जब स्फुरणा सर्वांशों में हुई, तब फल तो देना था एक जीव को किन्तु मिल जाएगा सब जीवों को जैसे भूमिकम्प से सर्व भूमि कंप जाती है सो इस कथन में अति व्याप्ति दोष आ जाता है, इस

लिए आत्मा पांचों निमित्तों से कर्मों के फलों को भोग लेता है।

प्र०—तो क्या ईश्वर फल प्रदाता नहीं है ?

उ०—ईश्वर कर्मों का फल देने वाला नहीं है।

प्र०—ईश्वर तो सर्वशक्तिमान् है इसलिए वह विना निमित्तों के भी फल दे सकता है ?

उ०—जब ईश्वर सर्व शक्तिमान् है तो पहिले जीवों को कर्म करने से रोकता क्यों नहीं, तथा जब बिना निमित्तों से फल दे सकता है तो फिर माता पिता के विना संयोग से पुत्र क्यों नहीं उत्पन्न हो जाता तथा बिना बादलों के वर्षा भी क्यों नहीं हो जाती।

प्र०—कर्म करने में जीव स्वतंत्र है, इसलिए ईश्वर उसको नहीं रोकता है, फिर माता पितादि का जो अनादि नियम है उसको ईश्वर नहीं रोक सकता।

उ०—हां, यह तो ठीक है, जीव कर्म करने में स्वतंत्र है किन्तु ईश्वर तो दयालु हैं, इसलिए उसको दया के ? वास्ते बलात्कार से भी रोकना चाहिए, तथा जब अनादि नियमों को रोक नहीं सकता तब ईश्वर सर्व शक्तिमान् न हुआ, और फिर अनादि नियम कैसे हुए। तथा फिर निमित्तों से भी कर्म भोगने का

अनादि नियम क्यों नहीं मान लिया जाता।

प्र०—हमने तो यह सुना हुआ है, कि जैनी लोग कर्मों की सिद्धि में जहर का दृष्टान्त दिया करते हैं, जैसे कि ज़हर जड़ होने पर भी खाने वाले को मार डालता है उसी प्रकार कर्म जड़ होने पर भी फल देते हैं?

उ०—हां, ज़हर का दृष्टान्त भी ठीक है, किन्तु उस में भी जब पांचों ही कारण मिल जाएंगे, तब ही ज़हर खाने वाला मरता है। जैसे कि—ज़हर खाने का समय ज़हर तीक्ष्ण और मारने का उसका स्वभाव, खाने वाले की आयु का समय निकट आजाना, ज़हर का खालेना और खाने में पुरुषार्थ करना। जब यह पांचों ही कारण मिल जाएंगे तब ज़हर खाने वाला मर जावेगा।

प्र०—क्या चोर ने जब चोरी की तब वह अपने आप जेल में जाना चाहता है?

उ०—नहीं।

प्र०—तो फिर उसको जेल में कौन लेजाता है?

उ०—उसके चौर्य आदि कर्म निमित्त बन कर लेजाते हैं।

प्र०—राज पुरुष उसको पकड़ते हैं वा नहीं?

उ०—जब राजपुरुषों को चोरी आदि कर्म माळूम होजाएंगे

तब ही उसको पकड़ेंगे, यदि मालूम न हो तो नहीं पकड़ते।

प्र०-निमित्त जड़ हैं वा चेतन ?

उ०-जड़ भी और चेतन भी।

प्र०-यह कैसे ?

उ०-चोरी आदि कर्म तो जड़ निमित्त हैं पुरुषार्थ चोरी करने का और राज पुरुष द्वारा पकड़ने के पुरुषार्थ चेतन निमित्त हैं, इन्हीं द्वारा जीव कर्मों के फल को भोगता है।

प्र०-जीव कितने प्रकार के निमित्तों को बांधते हैं, जिन से वह कर्मों के फलों को भोगते हैं ?

उ०-जीव चार प्रकार के निमित्तों को बांधते हैं, जैसे कि देवताओं का, मनुष्यों का, पशुओं का, और अपने आत्माओं का।

प्र०-अपने आत्मा का निमित्त कैसे होता है ?

उ०-जिस में किसी देव-मनुष्य और पशु का निमित्त न होवे वही अपने आत्मा का निमित्त कहाता है।

प्र०-इसमें प्रमाण क्या है ?

उ०-जैसे कोई प्रासाद (मकान की छत) पर चढ़ा फिर गिर कर अपने आप ही मर गया सो उस के मरने में

किसी अन्य का निमित्त नहीं है, इस लिए उसे अपने आत्मा का निमित्त कहा जाता है।

प्र०—जब कोई किसी पदार्थ को देखता है तब उसके देखने से दो प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है, एक उस पदार्थ का और दूसरे उस के बनाने वाले का इसी प्रकार जगत् के देखने से यह भी ज्ञान होजाता है, कि इस को भी किसी ने बनाया है?

उ०—यह कथन भी ठीक नहीं है, क्योंकि इन्द्र धनुप के देखने से उस का ज्ञान तो होगया किन्तु उस को किसने बनाया यह ज्ञान किसी को भी नहीं उत्पन्न होता तथा ईश्वर और जीव का ज्ञान तो है परन्तु यह शंका इस में नहीं उत्पन्न होती कि इन दोनों को किस ने बनाया है। इस लिये यह पदार्थ जैसे अनादि हैं वैसे जगत् भी अनादि है।

प्र०—जगत् को अनादि तुम किस प्रकार मानते हो?

उ०—जगत् को द्रव्यार्थिक नय से अनादि मानते हैं अर्थात् प्रवाह से जगत् अनादि है परन्तु पर्याय से नहीं।

प्र०—द्रव्य और पर्याय का क्या लक्षण है?

उ०—द्रव्य उसी को कहते हैं, जो अपने पर्याय को प्राप्त होता रहे जैसे पुद्गल द्रव्य तो एक है, किन्तु इसके

पर्याय अनेक उत्पन्न हो रहे हैं शुभ पुद्गल से अशुभ बन जाता है अशुभ से शुभ बनता है, जैसे भोजन से शरीर के रसादि बनते हैं।

प्र०—जगत् के पर्याय का कर्त्ता कौन है ?

उ०—जड़ और चेतन।

प्र०—कर्म कौन करता है ?

उ०—कर्म आत्मा मन वचन और काय के द्वारा ही करता है, किन्तु कर्मों के मुख्य कर्त्ता राग द्वेष हैं जब आत्मा में राग और द्वेष का आवेश होता है वही समय जीव के कर्म बन्ध का होता है।

प्र०—क्या ईश्वर कर्म नहीं कराता है ?

उ०—यदि ईश्वर कर्म कराता तो इसमें दोष उत्पन्न होजाते हैं, जैसे एक तो जब ईश्वर कर्म कराता है जीव की कर्म कर्त्ता विषय स्वतन्त्रता नष्ट हुई, दूसरे जब ईश्वर कर्म करवाता है, तब भोगने वाला भी वही होना चाहिए जैसे किसी ने खड्ग से किसी का गला काटा तो दंड खड्ग को नहीं, किन्तु मारनेवाले को है इसी प्रकार दंड ईश्वर को ही होना चाहिए।

प्र०—ईश्वर ने तो शिक्षा की है कि तुम ऐसे कर्म करोगे तो इस प्रकार के फल पाओगे सो जो ईश्वर के कहे अनु-

सार कर्म करता है ईश्वर उस को सुख देता है जो नहीं करता उस को दुःख देता हैं ?

उ०—ईश्वर ने जीवों को किस के द्वारा उपदेश किया कि तुम ऐसे कर्म करो वा न करो क्योंकि उसके शरीर नहीं है और न मन है न वाणी है तो भला कहा कैसे तथा जब ईश्वर सर्वज्ञ है और दयालु भी है तो पहिले कर्म करने ही क्यों देता है इस लिए यही मानना ठीक है कि, जीव आप ही कर्म करता है और अपने बांधे हुए निमित्तों से भोग लेता है अपितु ईश्वर तो सर्वज्ञ और सर्वदर्शी अनन्त सुख में निमग्न है।

प्रश्नावली।

१—कर्म जड़ हैं किम्वा चेतन।

२—जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है वा परतन्त्र।

३—जीव फल भोगने में स्वतन्त्र है वा परतन्त्र।

४—कर्मों के फल कौन भोगता है।

५—कर्मों के फल भोगने के निमित्त कौन २ से हैं।

६—क्या ईश्वर फल प्रदाता नहीं है।

७—निमित्त जड़ हैं वा चेतन।

चौदहवां पाठ।

कुंडकोलिक श्रावक।

कांपिल्यपुर नाम वाले नगर के बाहिर एक सहस्राम्र नाम वाला बड़ा ही सुन्दर बन था, जिस में छै ही ऋतुओं के फल फूल लगते थे वह अपनी लक्ष्मी को ऐसे धारण किए था जैसे नन्दन बन अपनी लक्ष्मी को धारण किये हुए है। उसी नगर में जित शत्रु नाम वाला न्याय नीति से युक्त प्रजा का हितैषी राजा राज्य करता था, तथा अपनी न्याय नीति से उसने शत्रुओं को पराजय कर दिया था, उसी नगर में एक कुण्डकोलिक नाम वाला सेठ बसता था, उस के पास अठारह करोड़ सुनइये थे और राज्य में उस का बड़ा भारी मान था। और पुष्पा नाम वाली उस की धर्मपत्नी थी जो रूपवती और पतिव्रता थी।

कुंडकोलिक सेठ और उस की धर्म पत्नी पुष्पा यह दोनों श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के प्रतिपादन किए हुए धर्म को पालन करते थे।

एक समय की बात है कि, वह कुंडकोलिक श्रावक

अपनी अशोक वाटिका में मध्यान्ह काल के समय नामांकित मुद्रिका और उत्तरासन को उतारकर उन दोनों को पृथिवी के शिलापट्ट पर रखकर आप श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के प्रतिपादन किए धर्म को ग्रहण करके बैठ गया। तब उसके पास एक देवता प्रगट हो उस की मुद्रिका तथा उत्तरासन को उठाकर उस के सामने आकाश में खड़ा होकर कहने लगा कि हे कुंडकोलिक ! गोशाला मंखली पुत्र का प्रतिपादन किया हुआ धर्म बड़ा ही सुंदर है। क्योंकि, उनके कहे हुए धर्म में कुछ भी पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता अपितु उन्होंने बतलाया है कि जो कुछ होना है वह अवश्यमेव ही होजाएगा इसलिए पुरुषार्थ न करना चाहिए किन्तु श्रीश्रमण भगवान् महावीर स्वामी का धर्म इसके विपरीत कहा हुआ है उन्होंने पुरुषार्थ को मुख्य माना है इसलिए भगवान् श्री महावीर स्वामी का धर्म उत्तम नहीं है क्योंकि, इस में पुरुषार्थ करना पड़ता है तब कुंडकोलिक श्रावक ने उस देव से कहा, यदि तुम्हारे कथनानुसार ऐसे ही है तो फिर तुम कुछ सुकृत करने से देव बने हो या बिना सुकृत किये ही तुम देव बन गए हो, तब देवता ने उत्तर में कहा कि मैंने कोई सुकृत आदि में पुरुषार्थ नहीं किया अपितु मैं तो बिना पुरुषार्थ किये ही

देव बन गया हूं इस के प्रति उत्तर में श्रावक ने कहा कि, कि, हे भद्र ! जब तुम विना पुरुषार्थ के देव बन गए हो तो भला जिन जीवों के देवयोनि के जाने योग्य पुरुषार्थ है ही नहीं तो वह जीव देव क्यों बने जैसे कि, पांच स्थावरादि जीव देव क्यों नहीं बनते, इस प्रकार के प्रति वचन कहे जाने पर वह देव नाम मुद्रिका और उत्तरासन को छोड़कर शंका संयुक्त होकर चला गया।

तब उसी समय कांपिल्यपुर नगर के बाहिर सहस्राम्र नाम वाले उद्यान में श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विराजमान थे उन के व्याख्यान में नगर के सैकड़ों, वा सहस्त्रों नर नारी चले जारहे थे तब उसी समय कुंडकोलिक श्रावक भी भगवान् के समवसरण में गया तब श्री भगवान् ने सभा के समक्ष उस श्रावक से पूछा कि, हे श्रावक ! कल तुम को एक देव ने ऐसे कहा कि होनहार का मानना-रूप धर्म बहुत ही अच्छा है जो गौशाला मंखली पुत्र ने प्रतिपादन किया है अपितु भगवान् महावीर स्वामी का पुरुपार्थ रूप धर्म अच्छा नहीं है क्योंकि उस में पुरुपार्थ करना पड़ता है फिर तुमने यथोचित उत्तर दिये जिससे वह देव चला गया क्या यह वार्ता ठीक है ? तब श्रावक ने हाथ जोड़कर कहा कि हे भगवन् ! यह

वार्ता ठीक है और जैसे आपने कहा है वैसे ही हुई है तब श्री भगवान् ने कहा कि, हे श्रावक मैं तुम को धन्यवाद देता हूं जो तुमने पुरुषार्थ धर्म की युक्ति संगत सिद्धि की है। फिर श्री भगवान् ने साधुओं की ओर लक्ष्य करके प्रतिपादन किया कि हे साधो ! देखो, इस गृहस्थ ने पर वादी के प्रश्न का कैसा युंक्ति संगत उत्तर दिया तुम तो बारह अंगों की वाणी को पढ़ते हो तुम को योग्य है कि परवादियों की शंकाओं के समाधान करो और उनको पुरुषार्थ रूप सत्पथ में लाओ फिर कुंडकोलिक श्रावक भगवान् के बचनामृत को पान करके और प्रश्नोत्तर करके अपने घर में चला आया उसने सूत्रानुसार श्रावक धर्म पालन करके पहिले स्वर्ग में जन्म ले लिया वहां से मृत्यु होकर महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य जन्म पाकर मुक्त होजाएगा।

हे भव्य पुरुषो ! तुम इस कहानी से यह शिक्षा लो कि, श्री भगवान् महावीर स्वामी का धर्म होनहार का मानना नहीं है। किन्तु उनका धर्म पुरुषार्थवादी बनना है, पुरुषार्थ के द्वारा सब कार्यों की सिद्धि होती है। पुरुपार्थ के द्वारा ही प्राणी अपना वा परका उद्धार कर सकता है तथा मोक्ष के सुख भी पुरुपार्थ से प्राप्त कर लेता है इस लिए सुकर्मों के करने में कभी भी आलस्य न करना चा-

हिए, अपितु पुरुषार्थ के द्वारा सब सिद्धियें प्राप्त कर लेनी चाहिएं।

भजन

तर्ज़ गोरा बदन तेरा चांदसा, यह खाक में मिल जायगा।
दिन चार का है चांदना, जोबन तेरा छिप जायगा।

यह माल मंडप माडीया, गज बाज पीनस पालकी।
सब छोड़ कर चलना पड़े, जब काल सिर पर आयगा ॥ १ ॥

ग़फ़लत की गहरी नींद में, क्यों सोरहा अनजान तू।
यह वक्त तेरा प्रभु भजन का, नहीं पीछे फेर पछताएगा ॥ २ ॥

तेरा जिसम पानी का बुलबला, जाते ना लगती देरजी।
किस पर करे अभिमान तू, यह बर्फ सम ढल जाएगा ॥ ३ ॥

नर देह जो तुझ को है मिली, इसका ही था मिलना कठिन।
बिरथा जो इसको खो दिया, फिर मार जम की खाएगा ॥ ४ ॥

दुनिया के झगड़े छोड़ कर, दिल में हलीमी पकड़ले।
कहे दास इस संसार से, आवागमण कट जाएगा ॥ ५ ॥

॥ इति ॥

शिक्षायें ।

१—अपने हित और अहित का ध्यान रक्खो ।

२—जिस को बुरा समझते हो उस से बचना चाहिए ।

३—प्राण जाते हों तो जाने दो परन्तु धर्म न जाए ।

४—शुभ कर्म करने में आलसी मत बनो ।

५—अपने किए हुए उपकार को भूल जाना चाहिए ।

६—धर्म पुस्तकों को पढ़ते रहो ।

७—मढी मसानी माता आदि की पूजा न करनी चाहिए ।

८—कुत्ते बिल्ली आदि को बजाए रोटी के लाठी न मारो ।

९—मूर्ति को मूर्ति समझो परन्तु उस को मत्था न टेको ।

१०—अपने वृद्धों के आचरण किए हुए शुभ मार्ग पर चलो ।

११—जानने वाली बात को अवश्य जानो ।

१२—छोड़ने वाली बात को छोड़ दो ।

१३—अङ्गीकार करने वाली बात को अङ्गीकार (ग्रहण) करो ।

१४—अपने आप का भी ध्यान रक्खो ।

१५—विषयों से वा सर्व प्रकार के नशों से बचो ।

सूचना

इस शिक्षावली में लिखी गई शिक्षाएं अध्यापकगण विवेक पूर्वक बच्चों को बड़े प्रेम से समझावें क्योंकि उनका हृदय अति कोमल होता है।